गुलशन नन्दा

बदनाम

नन्दा पॉकेट बुक्स बम्बई

मूल्य
चार रुपये

मुद्रक : फाइन आर्ट प्रेस, बम्बई

Badnam Gulshan Nanda Rs. 4.00

अब तक प्रकाशित—

गुलशन नन्दा की रचना

१. घाट का पत्थर
२. जलती चट्टान
३. मेलाठं
४. नीलकंठ
५ सितारों के आगे
६. राख और अंगारे
७. देव छाया
८. शीशे की दीवार
९. टूटे पंख
१०. कलंकिनी
११. सांवली रात
१२ अंधे
१३. सांझ की बेला
१४. पत्थर के होंठ
१५. एक नदी दो पाट
१६. डरपोक
१७. सूखे पेड़ सब्ज पत्ते
१८. माधवी
१९. नीलकमल
२०. सिसकते साज
२१. काली घटा
२२. मैं अकेली
२३. गुनाह के फूल
२४. तीन इक्के
२५. कांच की चूड़ियां
२६. मैली चांदनी
२७. कटी पतंग
२८. प्यासा सावन
२९ चनगारी
३०. नया जमाना
३१. झील के उस पार
३२. शर्मीली
३३. भंवर
३४. अजनबी
३५. तीन सहेलियां
३६. बदनाम

गुलशन नन्दा के दो शब्द !

जब किसी को स्नेह और प्यार के साथ-साथ विश्वास भी प्राप्त होने लगे तो स्वाभाविक ही है कि ईर्ष्या और जलन के फलस्वरूप कुछ लांछन, कुछ कठिनाइयां और कुछ परेशानियां भी उसके हिस्से में आएं।

इस प्रकार की सभी उपलब्धियां मेरे लिए मानसिक सन्तुष्टि ही का साधन बनती है, क्योंकि यह इस बात का सबूत है कि आपका हार्दिक स्नेह और अटूट विश्वास मुझे और मेरी लेखनी को प्राप्त है।

आपके इसी प्यार और विश्वास का प्रतिफल है मेरा यह नवीनतम ३६ वां उपन्यास जिसे मैंने अपने प्रिय पाठकों के विचारों और उनकी भावनाओं को ध्यान में रखकर लिखा है। कृपया आप इसके अन्तर में गहरा झांककर उसके बारे में अपने निष्पक्ष विचार लिखें ताकि मैं जान सकूं कि मैं कहां तक आपकी भावनाओं और आकांक्षाओं से न्याय कर सका हूं।

एक

खिड़की के बाद आँगन। वाकी आँगन के तीनों ओर बरामदा। उत्तर की ओर दो कमरे। पूरब की ओर एक छोटा कमरा, जिसमें पेट-पूजा का उद्योग-धन्धा होता था। उससे सटा पक्का कुआं। खिड़की के ऊपर दोमंजिला कमरा। पहला मिट्टी से पाटा हुआ, दूसरा खपरैल।

आँगन में आते ही चारों ओर नजर दौड़ाकर देखा, वहाँ कोई न था। मेरा छोटा-सा एकमात्र नन्हा-मुन्ना, जिसकी उम्र एक साल की थी, खेल रहा था। उसके सामने कौड़ियां रखी थीं। जिगर का टुकड़ा विजय कौड़ियों को झाड़ु के साथ मुट्ठियों में पकड़ता और हंसता हुआ मुट्ठियों से छोड़ देता था।

बच्चा कौड़ियों से खेलने में मग्न था। उसे किसी प्रकार का तनिक भी विचार न था। छिपकर खड़ा हुआ मैं थोड़ी देर तक उसकी इस सुलभ बाल-लीला को देखता रहा। सोचा, 'बचपन भी एक निराला और मस्ताना जीवन है। न चाह और न साध। न आशा और न फिक्र, चिंता! सारा दिन खेलता रहा, उन बेजान चीजों से खेलना, जिनका कोई आकार भी नहीं होता, मानव के लिए मन बहलाना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।'

मुझे देखते ही उसने कौड़ियों को तितर-बितर अवस्था में ही छोड़ दिया और चारपाया की चाल से मेरी ओर दौड़ पड़ा।

खम्भे की ओट से हटकर अब मैं उसके सामने खड़ा हो गया। मेरे नजदीक पहुंचकर उसने अपना दायां हाथ मेरी ओर बढ़ाया।

उसकी इस सांकेतिक भाषा को मैं समझ गया। वह मेरी गोद में आना चाहता था। कौड़ियों का मोह उसने त्याग दिया था। मेरी माया के आगे वह प्राकृतिक आस्थाओं को भी भूल गया था। उसके दोनों हाथ और कमर से नीचे का हिस्सा मिट्टी से सना हुआ था। और मैं तुरन्त बाहर से लौटा था। अपने साफ और धुले हुए कपड़ों की ओर देखने के बाद मेरी यही इच्छा हुई कि विजय को इस अवस्था में गोद में न लूं, किन्तु पिता का वात्सल्य मेरे अन्दर उमड़ पड़ा, और मैंने हाथ बढ़ाकर उसे अपनी गोद में ले लिया।

गोद में लिए हुए ही मैं सीढ़ियों से होकर ऊपर चढ़ने लगा। ऊपर पहुंचते ही मैंने आवाज दी—"अरे भाई, क्या हो रहा है ?"

"जहन्नुम में जाए काम-धन्धा और तुम्हारा यह लाड़ला।" उन्होंने मेरी ओर देखा और बड़े कमरे में पलंग पर बैठकर तौलिये से हाथ साफ करती हुई कहने लगीं—"काम-काज से तो मैं तंग आ ही गई हूँ, ऊपर से यह लड़का नाकों दम कर दिया है। न गोद में चैन से रहेगा और न कहीं स्थिर बैठकर खेलेगा ही। जहां रहेगा, चीजों को उलटता-पलटता रहेगा। सबसे ज्यादा तो इस बात का डर बना रहता है कि कहीं यह गरम वस्तु न छू ले। उस दिन लालटेन का शीशा छू लिया था कि उंगली में फफोले उठ आये थे। मैं तो परेशान हो गई हूं, इससे।"

मैं भी पलंग पर ही बैठ गया। विजय ने जब अपनी मां को देखा तो हाथ-पांव पटक-पटककर उन्हीं की गोद में जाने को मचलने लगा। दूध पीने के लालच में वह छटपटाने लगा। उसकी इस प्रकार की उछल-कूद से मैं भी तंग आ गया और अपनी गोद से उतारते हुए मैंने कहा—"लो भई, यह तुम्हारे पास ही जाना चाहता है।" और विजय को उनकी ओर बढ़ा दिया।

लड़के को अपनी गोद में सम्भालते हुए उन्होंने कहा—"यह मुझे अब जिन्दा नहीं छोड़ेगा।"

"बच्चों से घबड़ाया नहीं करते।" मैंने श्रीमतीजी से नम्र वाणी में कहा—"इसी बाल-क्रीड़ा को देखने के लिए कितने लोग तरसते हैं, ललचाते हैं। किन्तु सबको यह सुख नसीब नहीं होता। महाकवि सूरदासजी ने कृष्ण भगवान की बाल-लीला क्या लिखी, हमेशा के लिए अमर हो गए वे।"

"यह बात तो है।" और उन्होंने बच्चे की ओर देखा।

एक पत्थर की मूर्ति को अपनी जेब से निकालकर श्रीमतीजी की ओर बढ़ाते हुए मैंने कहा—"लो, यह पत्थर की मूर्ति। आज बाजार में बिक रही थी, पार्वतीजी की मूर्ति तुम्हें ज्यादा पसन्द है न ?"

"जी हां।" उन्होंने विजय को अपनी गोद में लिटाकर अपना स्तन उसके मुंह में पकड़ा दिया और एक हाथ में मूर्ति लेकर उसको ध्यान से देखती हुई बोलीं—"यह मूर्ति तो बहुत ही अच्छी है। कहां बिक रही थी यह ?"

"चौक को छोड़ अन्यत्र कहां बिक सकती हैं ऐसी चीजें ?"

श्रीमतीजी ने मुझसे सवाल किया—"इस तरह की मूर्तियां हमेशा तो नहीं बिका करती होंगी ?"

जवाब देने के लिए मैंने मूर्ति की ओर देखा। वह लगभग नौ इन्च लम्बी होगी। हाथ-पांव छोटे-छोटे एवं सुघड़ लग रहे थे। चेहरे की मासूमियत ने तो चार चांद लगा दिये थे, जिसमें नाक और होंठों की बनावट देखकर लगता था कि उसको देखता ही रहूं। एक हाथ सीध में था तो दूसरा उठा हुआ। उठे हुए हाथ की उंग-लियों को देखने से लगता था कि यह पार्वती की मूर्ति अपने प्रिय-तम पति शंकर भोले बाबा को अपने पास बुला रही है। इसके साथ महादेव की मूर्ति न होना मुझे खटका—"हमेशा तो नहीं बिका करती ये मूर्तियां।" मैंने जवाब दिया—"कभी-कभार कोई कारी-गर इधर आ भटकते हैं तो अपने साथ लाई इस तरह की मूर्तियों

को किसी भी छोटे शहर में बैठकर बेचते हैं। यही तो हम लोगों का दुर्भाग्य है कि ग्रामीण क्षेत्र सारा शहर में पत्थर की मूर्ति की कोई दुकान नहीं है।"

"कारीगरी तो कमाल की है।" मेरी पत्नी की आवाज थी यह।

"यह भी कहने या कोई पूछने की बात है।" मैंने उनसे कहा— "पत्थर के बेढब और बेडौल टुकड़ों को सावधानी से काट-छांटकर इस रूप में लाना कितनी लगन एवं कितना कठिन काम है। लोहे की छेनी ज़रा-सा चुकी या छोटी-सी तरिया ने ज़रा-सा जोर लगाया कि सारी मेहनत एक ही क्षण में बेकार गई। पत्थर के केवल टुकड़े ही नजर आयेंगे।"

"इस पर पालिश करके इसको कितना चिकना कर दिया है उन कारीगरों ने।" मेरी पत्नी ने मूर्ति पर हाथ फेरते हुए कहा — "यह भी एक बेमिसाल एवं अद्भुत कला है और लगता है, इस कारीगरी को सीखना कोई हँसी-खेल नहीं है।"

"मेरा तो ख्याल है कि जो इस कला को सीखना चाहता होगा वह बचपन से ही इस काम में रहकर अभ्यास करता होगा।"

"तब तो उन्हें कारीगर बनने में बहुत समय लग जाता होगा।" मेरी श्रीमतीजी ने कहा और चूल्हे की ओर चली गई। चूल्हे पर रखा गया कोयला अब आग हो गया था। उन्होंने उनको चिमटे से ठीक किया और केतली में पानी रखकर चूल्हे पर चाय के लिए रख दिया।

"आपने बताया नहीं कि तब तो एक अच्छा कारीगर बनने में काफी समय लग जाता होगा ?" मेरी श्रीमतीजी ने पुनः अपना प्रश्न दुहराया और उन्होंने मेरी ओर तिरछी नजरों से देखा और मुझे लगा कि वह थोड़ा-सा मुसकुराई है।

उनके सिर पर के आंचल को मैंने अपने हाथों से हटा दिया

ग्रौर उनके बालों सहित प्राकृतिक सुन्दरता को ग्रपनी नजरों के द्वारा कलेजे में पीकर कहा—"हाँ, यह तो है ही। यह सब करने के कई साल बाद छेनी ग्रौर सरिया पकड़ना सीखना पड़ता होगा, उन्हें। बाद में बड़े-बड़े टुकड़ों को मूर्ति बनाने के लिए काट-छाँटकर साईज में लाना पड़ता होगा, तब वे धीरे-धीरे कुछ सीखते होंगे। ग्रसल में यह महीन कारीगरी है। इसके बाद दूसरा नम्बर ग्राता है—सोने की कारीगरी का।"

"सोने की कारीगरी?" पत्नीजी ने साश्चर्य पूछा।

"हाँ, सोने की कारीगरी विश्व में द्वितीय स्थान रखती है। सोनार सोने के तरह-तरह के, किस्म-किस्म के तथा तार एवं पत्थर के छोटे-बड़े ग्रनेक टुकड़ों को जोड़कर एक प्रकार से खड़ा कर देता है, जिसकी सुन्दरता ग्रौर कारीगरी देखते ही बनती है।"

"तब तो कोई ग्रमीर घराने का लड़का इस कला को नहीं सीखता होगा?"

"सोने की कारीगरी या पत्थर की कारीगरी?" मैंने जान-बूझकर ऐसा उलझन भरा प्रश्न उनसे किया।

"सोने की कारीगरी तो केवल सोनारों के सिवा कुछ कसेरा या फिर बंगाली मुसलमान ही करते हैं।" श्रीमतीजी ने मुस्कराते हुए कहा—"प्रश्न को उलझाइये मत। मैंने पत्थर की कारीगरी की बात की थी। बताइये···?"

"भला ग्रमीर यह क्यों चाहने लगे कि उनका लड़का पढ़ना-लिखना त्यागकर मजदूरी करे ग्रौर एक साधारण ग्रादमी (किन्तु पत्थर की कला का मर्मज्ञ) के मातहत काम करे।" मैंने ग्रपना कहना जारी रखा—"हमारे देश में सभी प्रकार के कलाकारों को प्रायः मजदूर ही समझा जाता है। हाँ, यदि इसकी कोई पाठशाला खुल जाती, जैसा कि हर कला के लिए विद्यालय खुले हैं तो ग्रमीर घराने के कुछ बच्चे इस कला को सीख सकते हैं।"

"इतनी अच्छी कारीगरी जानते हुए भी वह कारीगर एक साधारण व्यक्ति समझा जाता है।" पत्नी ने पूछा—"ऐसा क्यों ?"

'यही तो दुर्भाग्य है, हम भारतवासियों के लिए। यहां शिक्षा, कला, राजनीति, होशियारी की कमी नहीं है। कमी है तो केवल सद्भावना और समझदारी की।" मैंने कहा—"इसी कारण हमारी गरीबी ने इस कला की ओर से हमारा ध्यान हटा लिया है। एक कहावत है— भूखे भजन न होंहि गोपाला, ले लेउ अपनी कंठी माला।' ठीक यही बात है यहां। यहां के लोग अधिकतर गरीबी के मारे हैं। दिन-रात उन्हें अपने पेट, चूल्हा-चौकी, लकड़ी-बासन और नमक-तेल की ही चिन्ता लगी रहती है। यही कारण है कि इस तरह की कला का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है।"

' इस मूर्ति की नाक बहुत ज्यादा पसन्द है मुझे। कितनी सुघड़ता दिखलाई गई है, इस मूर्ति की नाक में।' पत्नीजी मूर्ति के ओठों पर हाथ फेरती हुई बोली—' और होठों की बनावट ने तो गजब ढा दिया है। लगता है, सच में यह मानव का ही एक अंग हो।"

"मानव तो नहीं, किन्तु मानव की प्रतिमा तो है ही यह।" मैंने कहा।

"पास के ही एक गांव में एक बुढ़िया के पास पत्थर की बहुत बड़ी और सुन्दर मूर्ति है।" पत्नी ने कहा।

मैंने अनमने-भाव से कहा—"होगी !"

"तारीफ यह है कि वह बुढ़िया उस मूर्ति को बेचना नहीं चाहती।" पत्नी ने कहा—"अभी थोड़े ही दिन तो हुए हैं कि अख-बारों में निकला था इस मूर्ति के लिये सरकार एक लाख रुपये उस बुढ़िया को दे रही है, परन्तु वह बुढ़िया मूर्ति बेचने को तैयार नहीं।"

"क्या ?" मैंने आश्चर्य से पूछा—"क्या उसके पास और भी मूर्तियां हैं ?"

"नहीं, उसके पास केवल वही एक मूर्ति है, जिसे वह प्राणों से अधिक प्यार करती है तथा सावधानी से रखती है।" श्रीमतीजी बोलीं और विजय को पलंग पर सुलाकर ऊपर एक चादर डाल दी। वह सो गया था।

"उस मूर्ति में कुछ रहस्य है, ऐसा मुझे लगता है।"

"सन्देह की बात ही है।" पत्नी ने भी हामी भरी।

"हम लोग एक दिन उस गांव में बुढ़िया के पास चलें और देखें कि वह मूर्ति कैसी है और वह बुढ़िया उस मूर्ति को क्यों नहीं बेचने को तैयार है।" मैंने कहा और अपना कुरता उतारता हुआ बोला—"आज मौसम कितना सुहावना है ?"

"तो हम क्या करें ?" शरारत भरे शब्दों में पत्नी बोली।

मैंने हाथ बढ़ाकर उनको पकड़ना चाहा, मगर वह एक अदा से घूमकर फौरन रसोई के पास चली गयीं।

दो

हम रहते तो थे शहर में ही, किन्तु एक छोर पर। और जिस बुढ़िया के पास वह अनोखी, इतिहास से भरी मूर्ति थी, वह गांव में रहती थी। वह गांव शहर से आधा मील दूर था। हम जिस छोर पर रहते थे, वहां से पास ही एक नहर थी। और नहर के उस पार से, रेलवे लाईन से होती हुई एक चौड़ी पगडण्डी उस गांव में गई थी। कहने को तो वह गांव था, मगर सारा दिन शहर और गांव; गांव और शहर लोगों का लगा रहता था। हम लोगों ने नहर पार

की ओर चौड़ी पगडण्डी पर चल पड़े।

सवेरे का मौसम था। धूप अच्छी लग रही थी। लगभग आधा घंटा चलने के बाद हम लोग गांव के नजदीक पहुंचे। वैसे तो वह गांव रेलवे लाईन के पास से ही साफ दिखाई पड़ता है। पत्नी जी ने हाथ से इशारा किया और कहा—"वह जो एक दोमंजिला पक्का मकान दीख रहा है न, वही बुढ़िया का मकान है और वह उसी में अकेली रहती भी है।"

मैंने ध्यान से उस ओर देखा और आश्चर्य से कहा—"वह तो किसी अच्छे आदमी का घर दीखता है!"

"तो गोया आपकी नजरो मे बुढ़िया···।"

बीच से ही बात काटकर मैंने कहा—"ऐसी बात नहीं···" और मुझे चुप हो जाना पड़ा।

पतली-चौड़ी, ऊबड़-खाबड़ गलियों को पार करते हुए हम लोग किसी तरह बुढ़िया के पास पहुंचे।

दरवाजे के अन्दर प्रवेश करते ही हमें एक नौकर मिला, जिसने मेरी पत्नी को एक लम्बी सलामी की और अन्दर फुर्ती से जाकर बैठक का दरवाजा खोलकर बैठने के लिए कहा। शायद मेरी धर्मपत्नी को वह पहचानता होगा। हम लोग कमरे में गए। कमरा बहुत ही सुन्दर ढंग से सजा हुआ था। उसके कोने में एक परदा टंगा हुआ था।

हम लोगों के कमरे में बैठते ही वह नौकर अन्दर चला गया।

नौकर के अन्दर जाते ही मेरी श्रीमतीजी ने धीरे से मुझसे कहना शुरू किया—"इस कोने में जो परदा टंग रहा है न, वहीं वह पत्थर की मूर्ति रखी हुई है। इस परदे को उस बुढ़िया के अलावा और कोई नही हटाता। वह जब आयेगी, तब इस परदे को हटायेगी।"

उसी समय वही नौकर कमरे में आया और कहने लगा—"तब तक आप लोग नाश्ता करें और चाय पीयें।" और सामने मेज पर चाय, कुछ नमकीन और कुछ मिठाइयां रखता हुआ वह बोला—"मालकिन जी स्नान करने के बाद ठाकुरजी की पूजा पर बैठी हैं। उन्हें पूजा पर बैठे काफी देर हो गई है। अब जल्द ही पूजा समाप्त होगी।" वह अन्दर चला गया, पुनः।

उसके जाते ही मैं बोला—"बड़ी पुजेड़ी हैं यह तो?"

विजय मिठाइयों को देखकर, खाने के लिए मचलने लगा। श्रीमतीजी ने एक टुकड़ा तोड़कर सबसे प्रथम उसके मुंह में डाल दिया। मुंह में मीठा पड़ते ही वह शांत हो गया। तब उन्होंने कहा—"हां, पुजेड़ी तो हैं ही यह। ठाकुरजी की पूजा करने के बाद, वह यहां आकर इस मूर्ति की भी पूजा करेंगी। देखियेगा, किस तरह की श्रद्धा और भक्ति के साथ। वह इस मूर्ति की पूजा करती हैं।"

"अच्छा!" मुझे काफी विस्मय हुआ। सोचा, सिवा भगवान की मूर्ति के और किसी की मूर्ति को पूजना कठिन है। यदि तस्वीर होती तो अन्दाज लगाया जा सकता था कि वह तस्वीर इनके माता-पिता या पति की हो सकती थी। मगर पूजने वाली वस्तु पत्थर की मूर्ति थी, तस्वीर या कैलेण्डर नहीं। तब भी मैंने जान-बूझकर पूछा—"किसी देवता की मूर्ति है क्या यह?"

"नहीं!" मेरी पत्नी ने कहा और विजय को अपनी गोद से नीचे उतार दिया।

मेरा आश्चर्य और बढ़ गया—"तब?"

"इस पत्थर की मूर्ति में चार व्यक्ति दिखाए गए हैं।" मेरी पत्नी ने एक बार विजय की ओर देखा और कहने लगीं—"दो युवती, एक लड़का और एक मर्द। मैंने कभी इस सम्बन्ध में इनसे पूछा तो नहीं है, तब भी ध्यान से देखने पर पता चल जाता है कि दोनों

युवतियों में एक का चेहरा इस बुढ़िया से काफी मिलता-जुलता है । मेरा अपना ख्याल है वह मूर्ति इस बुढ़िया की है जबकि यह जवान थी।"

मैं यह सब चुपचाप सुन रहा था। मेरी श्रीमतीजी और न जाने क्या-क्या कहने जा रही थीं कि तभी वह बुढ़िया इस कमरे में आयी जिसमें हम सब बैठे हुए थे। उन्होंने एक नजर हम तीनों पर डाली और उस कोने में चली गईं, जहाँ परदा था, पत्थर की मूर्ति थी। अब हम लोग आश्वस्त हो गये और नाश्ता करने में जुट गये। मीठा खाने के बाद हमने पानी पीया और चाय पीते हुए मैं उन्हीं की ओर ध्यान से देखने लगा। वह वहां कोने में जाकर घुटनों के बल, जमीन पर, जहाँ एक कम्बल का छोटा आसन बिछा था, बैठ गयीं और परदे को उन्होंने हटा दिया।

उसी समय एक बड़े थाल में, जिसमें तरह-तरह का पूजा का सामान था, लेकर पीछे से वही नौकर आया और उनकी दाहिनी ओर रख दिया। सारा काम पलक झपकते ही नियम और समय पर हुआ कि मैं अचम्भे में पड़ा रह गया।

परदा हटाते ही बुढ़िया ने दोनों हाथ जोड़कर पत्थर की मूर्ति को प्रणाम किया, उस समय उनकी आँखें बंद थीं। उनका सारा शरीर अचल था। लगता था, स्वयं ही एक मूर्ति हो। कितनी श्रद्धा है इनकी इस मूर्ति में ! दो मिनट बाद उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और आग में धूप डाली। मूर्ति के चरणों पर फूल चढ़ाये। शरीर में इत्र लगाया और आरती करते समय कुछ बुदबुदा भी रही थीं, इतने धीरे-धीरे कि हम लोग भी न सुन सकें कि वह कोई मंत्र पढ़ रही थीं या और कुछ।

उन्होंने दो फूल मूर्ति के चरणों पर चढ़ाये और हाथ जोड़कर कुछ बुदबुदाईं। कुछ देर बाद सिर झुकाकर मूर्ति को प्रणाम किया, फिर दो फूल मूर्ति के चरणों पर रखकर हाथ जोड़ दिए और बुद-

बुदाती रहीं। फिर सिर को नवाकर मूर्ति को नमस्कार किया। यही क्रम काफी देर तक चलता रहा। इस तरह उन्होंने सात बार किया।

मैं ध्यान से उनकी ओर उनकी गतिविधियों की ओर देख रहा था। मैं जानना चाहता था कि इस मूर्ति से इनका क्या संबंध हो सकता है कि इनकी भी इतनी भक्ति के साथ पूजा करती हैं।

मूर्ति की ओर मैंने गौर से देखा। उसकी चमक से तो ऐसा लगता था, मानो वह आज ही तैयार की गयी हो। कला की सफाई बेजोड़ थी। मूर्ति के किसी भी अंग में अस्वाभाविकता नहीं थी। हर अंग, हर दशा में प्राण होने का सदेह हो जाता था। एक साथ चार मूर्तियों का गढ़ना कठिन-सा होता है, उस पर भी इतनी सफाई।

मेरी आंखें उसे हमेशा देखते रहना चाहती थीं।

मैं उनकी पूजा समाप्त होने का इन्तजार करने लगा।

तीन

आधा घंटा बाद वह वहां से उठकर अन्दर चली गईं।

मैंने सोचा—हो न हो, इस बुढ़िया के जीवन की कहानी लंबी तो होगी ही, साथ ही दिलचस्प और करुणा भी। आज तक किसी मूर्ति या तस्वीर के समक्ष इतनी श्रद्धा से पूजा करते मैंने किसी को नहीं देखा था। यह एक मेरे लिए अद्भुत बात थी, अचम्भा की, आश्चर्य की!!

"अब कहिये, आप लोग···" कमरे में प्रवेश करती हुई बुढ़िया

बोली—"आप लोगों को तकलीफ तो अवश्य हुई होगी ?" वह इस समय सादा फीता, कोर की साडी पहने थी और ब्लाउज भी सफेद ही था। उसके खुले बाल गौरवर्ण शरीर पर खूब फब रहे थे। हालांकि उसकी गोरी चमड़ी काफी ढीली पड़ गई थी, तब भी सीधी लग रही थी और काफी सुन्दर भी। इससे मैंने अनुमान लगाया कि अपनी जवानी के दिनों में वह काफी आकर्षक और खूबसूरत रही होगी।

"इसके लिए धन्यवाद !" मैंने धीरे से मुस्कराने की असफल चेष्टा की, क्योंकि बुढ़िया की बात सोचते-सोचते मैं काफी गम्भीर हो गया था। मैं बोला—"हम लोग तो आपको ही तकलीफ देने चले हैं।"

"बहुत अच्छा किया है आपने।" वह एक कुर्सी पर बैठती हुई बोली—"अपनी बेटी को तो मैं पहचान गई, परन्तु···" वह पूरा वाक्य न कह सकी, न जाने क्यों ? पर वह मेरा परिचय जानना चाहती थी। वैसे भी कोई आदमी यह सब जो हो रहा था, देखकर अनुमान लगा सकता था कि मैं इन श्रीमती और बच्चे का कौन हो सकता हूं ? फिर भी मन की तसल्ली के लिए उसने पूछ ही लिया।

तभी तपाक से श्रीमतीजी ने उत्तर दिया—"आप इस मुन्ने के पिताजी हैं।"

"बहुत अच्छा !" और बुढ़िया ने अपने दोनों हाथ जोड़ दिये। "नमस्ते !" वह काफी खुश नजर आ रही थी, उस समय।

"नमस्ते !" मैंने भी कह दिया।

"किधर चले हैं, आप लोग सवेरे-सवेरे ?"

बुढ़िया की इस बात से हमें अचम्भे के साथ ही खुशी भी हुई, क्योंकि उसने मेरे मन की बात कही थी, मेरा उद्देश्य जानना चाहा था और मैं यही चाहता भी था। मैंने श्रीमतीजी की ओर देखा और श्रीमतीजी ने मेरी ओर। विजय को, जो काफी परेशान कर

रहा था अपनी मां को, अपनी ओर खींचते हुए मैंने धीरे से कहा—
"सच पूछिये तो हम लोग मूर्ति को देखने चले हैं और···"

"मूर्ति को ?" बीच में ही टोककर उसने आश्चर्य से पूछा—
"कैसी मूर्ति ? कौन मूर्ति ? मैं समझी नहीं।"

"एक पत्थर की मूर्ति जो शायद आपके पास है।" मैंने सहज-भाव से कह दिया। मुझे उनके मूर्ति के बारे में जानने की इच्छा से आश्चर्य नहीं हुआ। प्रायः ऐसा होता ही है।

"ओह !" कदाचित वह मेरा आशय समझ गयी थी। बुढ़िया ने एक लंबी सांस लेकर कहा—"उस मूर्ति को तो आप लोग अभी-अभी देख ही चुके हैं। वह एक मामूली पत्थर की मूर्ति के सिवा और कुछ भी नहीं है।"

"किन्तु···" और मुन्ना मेरी गोद से नीचे उतर गया।

"मैं देखती हूं कि एक साधारण-सी वस्तु को भी लोग कभी-कभी ज्यादा महत्व देने लगते हैं और इसी सिलसिले में, जैसा कि आपने अभी कहा है, मेरे पास यही एक पत्थर की बड़ी मूर्ति है।" बुढ़िया काफी गम्भीर हो गई थी। वह कहने लगी—"आयेदिन कोई न कोई मेरे पास पहुंचा ही रहता है, इस मूर्ति को देखने के लिए। कोई यह इरादा लेकर आता है कि इसे बेच दो। कोई कहता है—इसकी तस्वीर खींचूंगा। कोई जिज्ञासा प्रकट करता है—इस को देखूंगा, इत्यादि-इत्यादि। मेरी समझ में नहीं आता कि इस पत्थर की बेजान मूर्ति में कौन-सी ऐसी खूबी है, जिसके लिए लोग उमड़ते चले आते हैं।"

"तो लगता है, आप इस पत्थर की मूर्ति को ज्यादा पसन्द नहीं करतीं।" मैंने श्रीमतीजी की ओर देखा। मैं मन-ही-मन अपने इस प्रश्न पर अचरज से भर गया। हालांकि हो सकता है इस प्रश्न से उनको थोड़ी तकलीफ हुई होगी, परन्तु जिस उद्देश्य से मैं यहां इन के पास आया था, वह उगलवाना भी तो था इनसे। मैंने इसकी

प्रतिक्रिया के लिए उनकी ओर कनखियों से देखा।

"नहीं, ऐसा नहीं है।" बुढ़िया ने ज़रा देर से जवाब दिया—"यह प्राणों से अधिक प्यारी है, मेरे लिए। असल में पूछिए तो इस मूर्ति में ही मेरा एक इतिहास छिपा है। नहीं, नहीं, बल्कि यों कहिए कि मेरे जीवन का इतिहास छिपा है। इसी कारण मैं इस मूर्ति को अपने पास इतनी सावधानी से रखती हूं किन्तु क्या आप बता सकते हैं कि लोग इस मूर्ति की ओर क्यों आकर्षित हो रहे हैं?"

उनके इस प्रश्न का उत्तर मैंने सोच-समझकर इस तरह दिया, "इसकी असली खूबी तो एक पारखी ही बता सकता है।"

मैंने इतना ही कहा था कि बुढ़िया का वही चिर-परिचित नौकर उसी समय कमरे में आया और उनकी ओर देखते हुए पूछा—"मालकिन···!"

बुढ़िया शायद उसका मतलब समझ गई थी, बोली—"हां, आप लोगों के खाने का भी प्रबन्ध करो।"

अपने लिये भोजन का प्रबन्ध होता देख, मैं कुछ खुश हुआ। क्योंकि इन्हीं अवसरों पर काम की बातें जानी जा सकती हैं। भोजन के समय चित्त शांत रहता है और सहज ही मन के भाव सामने आ जाते हैं। फिर भी मैंने कहा—"नहीं, नहो, आप हमारे लिये इतनी तकलीफ न करें। हम लोग···"

"तकलीफ क्या होगी, बेटा?" बुढ़िया ने मेरी बात छीन ली और कहने लगी—"घर वापस लौटने में आप लोगों को काफी देर हो जायगी और फिर भोजन होटल में ही तो करने पड़ेंगे, क्योंकि घर के भोजन का समय तो रहेगा नहीं। फिर मेरा नाती भी आया हुआ है आज। वह क्या मेरे दरवाजे से बिन खाये ही अपने घर को वापस लौट जायगा?"

उसके इस तरह के सद्व्यवहार से मैं काफी प्रभावित हुआ। मैंने सोचा—यह कुलीन घराने की सभ्य नारी रही हैं और इनका

आचारण काफी अच्छा रहा होगा, क्योंकि हम लोगों को अपना मान लेने में तनिक भी झिझक नहीं हुई इन्हें। और किस सफाई से श्रीमती और मुन्ना से अपना रिश्ता जोड़ लिया, इन्होंने। मैं काफी हैरान और बहुत-बहुत प्रसन्न था कि हमको यहां काफी देर ठहरने का मौका मिल गया।

कमरे में सन्नाटा छाया रहा।

थोड़ी देर खामोश रहने के बाद वह बोली—"तो आप उस बेजान पत्थर की मूर्ति को देखियेगा ?"…और वह कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई। मैंने समझा, शायद वह भीतर जा रही हैं लेकिन वह अन्दर न जाकर उस कोने की ओर बढ़ गयी, जहां मूर्ति रखी हुई थी और उस पर परदा टंगा था। वहां पहुंचकर उसने परदा एक ओर सरका दिया—"यही वह पत्थर की बेजान मूर्ति है, जिसके लिये न जाने क्यों, लोगों को बेचैनी समाई रहती है।"

मैं काफी नजदीक से उस विलक्षण मूर्ति को देखना चाहता था, अतः वहां जाने के लिए मैं उठकर खड़ा हो गया। मेरी देखा-देखी मेरी पत्नी भी मुन्ने को गोद में लिए उठी और हम मूर्ति के पास कोने में गए। हम दोनों पति-पत्नी मूर्ति के पास ही बैठ गए और मैं ध्यान से उसमें बनी चारों मूर्तियों को देखने लगा। जैसा कि कुछ देर पहले मेरी श्रीमतीजी ने कहा था कि मूर्ति में बनी एक युवती के चेहरे से इस बुढ़िया का चेहरा काफी मिलता-जुलता है। गौर से देखने पर साफ पता चल गया कि मेरी पत्नी का कहना अक्षरशः सत्य था। चारों में से एक बुढ़िया का चित्र था, हूबहू।

मैंने अपनी श्रीमती जी की ओर देखा और तब मूर्तियों की ओर नजरें गड़ा दीं। दूसरी युवती को मैं पहचान न सका और न मैंने उसमें बने बच्चे को ही पहचाना। हां, मूर्ति में जो एक गरीब युवक दिखलाया गया था, जो आधी बांह की कमीज पहने था, घुटनों तक धोती थी उसकी और कन्धें पर गमछा लटक रहा

था, मुझे कुछ-कुछ परिचित-सा लगा वह। मुझे ऐसा भास हो रहा था कि मूर्ति में बने इस पुरुष को कहीं-न-कहीं मैंने अवश्य देखा है--मुझे याद नहीं आया। कुछ दिमाग पर जोर दे रहा था, ताकि कुछ याद आए। परन्तु साफ और विश्वास लायक याद नहीं आया।

काफी देर तक उन मूर्तियों को देखने के बाद मैं उठा और वापस अपने स्थान पर आ गया और कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—"आपके पास इस मूर्ति को कितने दिन हो गए ?"

मेरे साथ ही मेरी पत्नी भी वहां से मुन्ने को लेकर अपनी कुर्सी पर बैठ ही रही थी। बुढ़िया परदा सरका रही थी, उसने मेरी ओर देखा और वहां से चलकर अपनी कुर्सी तक आई और एक और फूल, गुलाब का फूल मुन्ना को पकड़ा कर बोली—"लगभग बीस-बाईस साल।"

"कितने में खरीदा था, आपने इसे ?"

मेरे इस प्रश्न से बुढ़िया ने अपनी भौंहें सिकोड़ीं। उसके चेहरे का रंग कुछ लाल-सा हो गया। मैं डरा। कहीं यह बुरा न मान जाय। कहीं मेरा ऐसा कहना मूर्ति का अपमान न समझ जाय। अपने पूछे हुए प्रश्न पर मैंने गौर किया तो पाया कि मेरा प्रश्न कुछ कड़वाहट से भरा है। मुझे पूछना चाहिए था—आपने इसको कहां पाया या आपके हाथ यह किस तरह लगी। लेकिन मुंह की कही हुई बात को मैं वापस कर नहीं सकता था। कनखियों से उसको देखता हुआ अपने प्रश्न के जवाब का इन्तजार करने लगा।

"भला ऐसी मूर्ति कहां पा सकती थी, मैं।" एक ठंडी सांस ली और बुढ़िया कहने लगी—"एक नुमाइश में मैंने इस मूर्ति को पहले-पहल देखा था और उसके व्यवस्थापक ने दया करके यह मूर्ति मुझे दे दी थी। और वह भी मुझे यह मूर्ति नहीं देता, लेकिन…" इतना कहते ही वह चुप हो गयी, मैं उसके चेहरे को लक्ष्य किए था

उनके बनते-बिगड़ते भावों को देख रहा था। और देख रहा था कि उनका चेहरा उदासी से भर गया है। उनकी आंखों में जल भर गया है। काफी देर तक न जाने वह किस विचार में मग्न रही। फिर उसने वहां से उठते हुए कहा—"मैं अभी आ रही हूं। तब तक आप लोग बैठे रहियेगा।" और वह अन्दर घर में चली गई।

कुछ देर बाद वह बुढ़िया कमरे में आयी और जिस कुर्सी पर वह पहले बैठी थी, बैठ गई।

"कारीगर ने अपनी सारी कला को जैसे निचोड़कर रख दिया हो, वैसे ही यह मूर्तियां लग रही हैं।" मैंने एकाएक बात का रुख मोड़ दिया। इस कारण कि मैं विषयान्तर नहीं होना चाहता था। मेरी इच्छा थी कि मैं इस मूर्ति की पूरी कहानी किसी तरह जान जाऊं, ताकि उसको किताब का रूप दे सकूं और साहित्य जगत में एक नयी चीज रख सकूं। मैंने अपनी इच्छा प्रकट की—"न जाने यह कितने दिनों में तैयार हुई होगी।"

"यह तो हम लोगों के लिए एक कल्पना ही हो सकती है।" बुढ़िया ने भी मेरे प्रश्न का उत्तर जल्दी दिया। वह भी शायद इस विषय पर बातें करना ही चाहती थी। वह कहने लगी—"क्योंकि हम लोग तो इस कला के ज्ञाता हैं नहीं। नजरों से देखने में जो अच्छा लगा, सुन्दर लगा, बस उसी की हम लोग तारीफ करने लगते हैं।"

"मैंने सुना है कि शायद सरकार इस मूर्ति को खरीदना चाहती है?" मैंने पत्नी से सुनी हुई बात यहां कह दी ताकि और कुछ, जो रहस्य छिपा हो, पता लग सके।

"जी, हां···!" उसने कहना जारी रखा—"कभी-कभी सुनी हुई बातें भी सत्य हो जाती हैं और आपने भी जो सुना है, वह अक्षरशः सत्य है। भारत सरकार के कुछ आदमी मेरे पास आये थे

और इच्छा व्यक्त की थी कि अनुसंधान विभाग के डायरेक्टर साहब इस मूर्ति को पाना चाहते हैं।"

"आपने क्या उचित समझा?" मैंने प्रश्न किया ताकि इस बारे में इस बुढ़िया का विचार जान सकूं।

"समझती क्या, मैं?" बुढ़िया के चेहरे का रंग बदल गया। गोरे बदन ने लाली का रूप ले लिया। वह आवेश में तथा कुछ तेज आवाज में कहने लगी—"इन लोगों के पास पैसा है।...तो क्या किसी का जीवन कागजों के नोटों से खरीद लेंगे? खरीद भी सकते हैं किसी की जिन्दगी ये लोग, किन्तु मैं उन आदमियों में से नहीं हूं जो अपनी जिन्दगी को बेच देते हैं। हां, यदि वे लोग इस मूर्ति को वैसे ही मांगते तो मैं दे भी देती। लेकिन रुपयों के बल पर तो मैं इस घर का एक तिनका भी किसी को नहीं दे सकती।"

उसने कहा—"यह मूर्ति मेरी जिन्दगी है और मैं अपनी जिन्दगी, एक मात्र यादों की जिन्दगी को मूल्य लेकर कभी नहीं बेच सकती, कभी नहीं बेच सकती।" वह चुप हो गई लेकिन उसका चेहरा तमतमाया हुआ-सा लगा मुझे। शायद वह थोड़ा क्रोध में थी।

फिर भी साहस करके झेंपते-झेंपते मैंने इतना कह ही दिया —"लेकिन मैं तो इसी मूर्ति के लिए चला था......!"

मैंने सोचा था कि मेरी इस बात से वह थोड़ा नाराज हो जायेगी कि फिर साफ इन्कार कर देगी।

लेकिन तभी उसने कहा—"आप अपना पूरा परिचय दें।"

मेरा साहस बढ़ा। हिम्मत हुई कि शायद काम हो जाय। लगता है मैं इस विशाल और कला से पूर्ण मूर्ति को पा जाऊंगा। मैंने कहा—"मेरा नाम 'लाल' है और मैं एक लेखक की हैसियत से जीवनयापन कर रहा हूं। और मैं अपने परिचय में क्या कहूँ, मेरी समझ में तो नहीं आता।" और मैं चुप हो गया।

मेरी नजरें बुढ़िया के चेहरे पर गड़ी थीं। मैं देख रहा था कि शयाद इनके चेहरे का भाव बदले, रंग उड़े। परन्तु ऐसा कुछ हुआ नहीं। वह शांत थी। उसका चित्त शांत लगता था। उसी वक्त उसने कहा—"मेरे कहने के अनुसार आप इस मूर्ति को आज ही ले जा सकते हैं, क्योंकि मुझसे ज्यादा सावधानी से आप इसको रखियेगा, ऐसा मुझे लगता है। मैं तो केवल इसको अपना इष्ट मान कर पूजती ही हूं, किन्तु आपके यहां रहने पर इसकी खातिर में चार चांद लग सकते हैं, संभवतः। किंतु एक साध है, मेरी।··· क्या आप उसे पूरा कर सकियेगा?"

मैं गद्गद हो गया। अब मुझे विश्वास हो गया कि यह मूर्ति मुझे मिल जायेगी। मैं इसे पा जाऊँगा। मेरे घर की शोभा दुगुनी हो जायगी! अब लोग मेरे पास आकर इस मूर्ति को देखना चाहेंगे। परन्तु इनकी एक साध की शर्त भी है, यहां पर। 'साध' ही तो है। 'साध' कभी रुपया या धन-दौलत नहीं हो सकती। यदि होगी भी तो एक इच्छा। और मन की 'इच्छा' को सहज ही पूरा किया जा सकता है। मैंने कहा—"मैं कब इन्कार कर सकता हूँ!"

"आप मेरी सारी कहानी को लिख देते, तो अच्छा।···"

"क्यों नहीं? क्यों नहीं? यह तो अपने बस की बात है।" हर्षातिरेक में मैं पागल हुआ जा रहा था। मेरी खुशी का पारावार न था। मैं आपे से बाहर होता जा रहा था। लेकिन क्या लिखूंगा, मैं! कहानी क्या है इसकी! किस तरह बीता है, इनका जीवन! यह सब जानना तो जरूरी था। मैं बोला—"लेकिन जब तक पूरा इतिहास नहीं जाना जा सकता तब तक ······"

बीच से बात काटकर वह कहने लगी— "भोजन के पश्चात् मैं अपने जीवन की सारी घटना, पूरी कहानी आपको सुनाऊँगी।" और विजय को पकड़ कर उसने अपनी गोद में बिठा लिया।

मुझे महसूस हुआ कि वह भी काफी प्रसन्न है।

चार

गौरी [illegible] प्रसादसिंह का जन्मस्थान आरा अनुमंडल ही था। यहीं [illegible] से बी० ए० करने के बाद ये बी० एल० करने [illegible]। [illegible] ज्यादा सम्पन्न न था, फिर भी पढ़ते समय इन[illegible] नहीं [illegible]। पढ़ने में तेज [illegible], अध्ययन भी [illegible] था, [illegible] पास करते और पहला हाई[illegible]।

[illegible] के [illegible] ही अलग थी। जजों के समक्ष ये जब [illegible] के लिए खड़े होते थे, तब ये ज्यादा जोर से नहीं बोलते थे। धीरे धीरे कम बोलते थे और जो कुछ भी कहते थे, वह सार तत्त्व ही होता था। इसका नतीजा यह [illegible] कि तीन वर्ष बाद ही ये सरकारी वकील नियुक्त किये गये। फिर इन्हें सरकार की सेवा करने का मौका मिल गया और अपनी योग्यता दिखाने का भी। पाँच वर्ष बाद ये शाहाबाद जिले में जज बनाकर भेज दिये गए।

गौरी बाबू इस जिले के नामी न्यायाधीशों में से थे। न्याय करने का इनका कुछ ऐसा अनोखा तरीका था कि सत्य हमेशा सामने आ जाता था। वकील चकित रह जाते थे कि असलियत का पता इन्होंने किस तरह लगा लिया। जनता को आश्चर्य होता कि इन्हें सत्य का पता किस तरह लग गया। बहस होने तथा फैसला सुनाने के बीच एक तारीख मुद्दई और मुद्दालेह को दी जाती थी। उस तारीख को गौरी बाबू दोनों पार्टियों से स्वयं कुछ प्रश्न करते जिससे इनको असलियत का पता काफी अंश में लग जाता था

और उन्हीं के आधार पर इनका फैसला होता था। चमत्कारिक न्याय होता था।

जब कभी कोई पेचीदा और अनोखा मुकदमा इनके पास आता था तो सत्य का पता लगाने के लिए ये एक दूसरा ही रास्ता अख्तियार करते थे। वकीलों द्वारा बहस समाप्त हो जाने के बाद इनका एक विश्वासी आदमी उस स्थान पर जाता, जहां का यह मुकदमा होता था और वहां सारी स्थिति का पता लगा आता था और इसी पर उस केस का न्याय होता।

कानूनों के ज्ञाता होने पर भी वे जानते थे कि इस समय का सारा भारतीय कानून अन्धा है क्योंकि जो लोग कानून बनाते हैं, वे गरीब जनता से, उनके दुखों से काफी दूर होते हैं और कानून का असर गरीबों पर ही पड़ता है। अशिक्षित जनता भी कानून का सहारा लेती है। बड़े और अमीरों को तो कानून से कोई मतलब ही नहीं होता। इसीलिए फैसले के समय ये कानून का सहारा नहीं लेते थे।

कानून का सहारा गौरी बाबू लेते थे या नहीं इस पर कुछ नहीं कहना है, किन्तु यह सत्य था कि अब तक जितने भी मुकदमों का फैसला इन्होंने दिया था दूध का दूध और पानी का पानी की भांति दिया था। दोषी को कभी मुक्ति नहीं दी तथा निर्दोष को कभी सजा न दी।

इसका फल यह हुआ कि जनता में यह काफी चर्चा के विषय हो गए।

गौरी बाबू का यश जितना ही फैला हुआ था, उतना ही वे भाग्यहीन भी थे। कहा भी गया है कि सभी को सभी प्रकार का सुख प्राप्त नहीं होता। अभी तक उन्होंने अपनी किसी भी सन्तान का मुंह नहीं देखा था। पितृ-ममत्व से सर्वथा अनभिज्ञ थे, अब तक बच्चों का प्यार एवं बाल-क्रीड़ा, उन्होंने नहीं देखी थी। उनकी

आंखें एक मात्र बच्चे के लिए तरसती थी, लालायित थी। वे चाहते थे एक शिशु, जो प्यारा हो, सुन्दर हो, छोटा-सा हो, बस !

आज सवेरे से ही वे इसी सोच-विचार में मग्न थे। और दिनों से अधिक उदास थे, आज वे। उनका भविष्य, उन्हें अन्धकारमय दीख रहा था। उनके बाद इस सम्पत्ति का क्या होगा? इसको कौन भोगेगा...? इसी तरह के विचार उन्हें उद्वेलित कर रहे थे कि उसी समय टेलीफोन की घन्टी टनटना उठी। रिसीवर को उठा कर कानों से लगाया और पूछा—"कौन?"

"जी, नमस्कार।" उधर से आवाज आई, "मैं हूं सदर अस्पताल का डाक्टर।"

"क्या है?" गोरी बाबू ने योंही यह प्रश्न पूछा।

"एक औरत मर गई है यहां, महाशय।" डाक्टर ने कहा।

"क्या हुआ था उसे?" गोरी बाबू ने प्रश्न किया। वे यह जानना चाहते थे कि एक औरत के मरने से उनका क्या सम्बन्ध हो सकता है? उन्होंने सोचा, शायद कोई विशेष बात हो सकती है, तभी डाक्टर साहब या तो सारा हाल कहकर जानकारी दे रहे हैं या फिर मुझे गवाह बना रहे हैं। हालांकि इस समय उनका मूड या तबीयत ऐसी न थी, जिसके कारण वे इस तरह की सांसारिक बातों में दिलचस्पी लेते। क्योंकि आए दिन सुनने में या दैनिक समाचारपत्रों में हत्या, डाका, चोरी, लूट, राहजनी, छुरेबाजी इत्यादि की घटनायें प्रकाश में आती रहती हैं। यहां तक कि मात्र थोड़ी-सी जमीन या आंगन में बटवारे के कारण एक भाई ने अपने सगे दूसरे भाई का, या भतीजे ने चाचा का, या विमाता पुत्र ने अपनी सौतेली माता को जान से मार डालने की घटना आज आम बात हो गई है। फिर उन्हें क्या पड़ी है कि एक औरत, जो सरकारी सदर अस्पताल में मरी है, में दिलचस्पी लें। किन्तु कर्त्तव्य की उनको ज्यादा चिंता थी। किसी काम के लिए टाल-मटोल करना या आज

का काम कल पर छोड़ना उनके लिए गवारा न था। एक तरह से वे एक मशीन की भांति सरकार का कार्य करते थे। कहीं पर कोई गड़बड़ नहीं। कहीं कोई विशेष परिवर्तन नहीं। जो चलता आ रहा था, वह होता जा रहा था और वैसा ही होता भी जायगा, उनका यही दृढ़ निश्चय था।

"कोई विशेष बात तो नहीं थी महाशय ?" डाक्टर साहब संकोच के साथ इतना ही कह सके। उन्हें कुछ गम-सा भी लग रहा था। हालांकि जिस उद्देश्य से डाक्टर ने न्यायाधीश महाशय को फोन किया था, उनकी पूर्ति के लिए स्वयं गौरी बाबू ने ही डाक्टर साहब से आग्रह किया था। डाक्टर ने सोचा, ऐसे सम्मानित व्यक्ति के साथ सीधी बात करना उचित नहीं। कहीं वे बुरा न मान जायें अतः जो बात इन्हें कहनी थी, उसकी भूमिका में थे ये।

'फिर...?" गौरी बाबू ने पूछा।

"वह औरत, जो अपने पीछे कुछ भी नहीं छोड़ गई है, एक मात्र डेढ़ साल की एक बच्ची के उसका इस असार संसार में अपना कोई नहीं था।" डाक्टर साहब ने कहा।

"जैसा कि मरने से पहले उसने अपना बयान दिया था, छः माह पहले ही उसका पति मर गया था।"

"यह औरत किस बीमारी से मरी है ?" गौरी बाबू ने प्रश्न किया। शायद वे समझ गये थे। सारी स्थिति का ज्ञान हो गया था उन्हें। डाक्टर के कहने का तात्पर्य वे अच्छी तरह समझ गए थे शायद।

डाक्टर ने टेलीफोन पर ही जवाब दिया—"बुखार था, उसे। दो दिन पहले तक वह ठीक हो गई थी। आज अचानक ही उसकी तबीयत एकाएक अत्यन्त ही खराब हो गई थी। बुखार तेज हो गया था। मुझे खबर दी गई तो मैं झटपट चलकर उसके पास पहुंचना ही चाहता था कि उसके प्राण-पखेरू हमेशा के लिए उड़ गए

और हम हाथ मलते ही रह गए।"

"यह सब प्रकृति की लीला है!" गौरी बाबू ने कहा। उनकी वाणी गम्भीर थी। उनका चेहरा उतरा हुआ ज्ञात होता था। शायद वे उदास थे उस समय। एक महामानव, मानव की मृत्यु पर दुःखी न हो, आश्चर्य है! लेकिन आज का मानव आदर्श महामानवों की लीक पर नहीं चल रहा है। आज हमारे सामने लोग मर रहे हैं, किन्तु हम सिवा देखने के और कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। किसी को सड़कों पर मरा देखते हैं, परन्तु अन्तिम संस्कार के लिए हम उद्धत होते। हम मानव जरूर हैं और मानव कहे जाने के अधिकारी भी हैं, लेकिन हमारा कर्त्तव्य एक पशु से भी गया-बीता हो गया है। काश! मानव अपने कर्त्तव्य से कभी विमुख न होता। रिसीवर कान में लगाते ही वे थोड़ी देर तक उसी दशा में खड़े मौन रहे, तत्पश्चात उन्होंने कहा—"हम अभी आ रहे हैं।" और रिसीवर उन्होंने रख दिया।

उसी समय उनकी पत्नी वहाँ आ पहुँची। कमरे में आते ही उन्होंने पूछा—"किसका टेलीफोन आया था?"

"सदर अस्पताल के बड़े डाक्टर का।" गौरी बाबू ने कहा।

"कोई खास बात थी, क्या?"

"हाँ, खास बात ही थी" गौरी बाबू ने कुछ प्रसन्न-मुद्रा में कहा—"परन्तु डाक्टर के लिए नहीं···।"

"फिर···?" बीच से ही बात काटकर उनकी पत्नी ने साश्चर्य पूछा।

"हमारे लिए।"

"हमारे लिए?" उनकी पत्नी को कौतूहल भी हुआ—"हमारे लिए भला खास बात क्या हो सकती है?"

"एक औरत एक डेढ़ वर्ष की बच्ची छोड़कर मरी है।"

"ओह! यह बात है?" उनकी पत्नी ने मुस्कराते हुए कहा—

"तो अस्पताल हम लोगों को शीघ्र ही पहुँचना चाहिये।" और उन्होंने अपने पति की ओर देखा।

उसी समय कपड़े बदलते हुए गौरी बाबू ने कहा —"हाँ, जरा जल्दी करो। हम लोग अभी अस्पताल ही चलेंगे। नौकर ने कह देना कि सोफर को गाड़ी निकालने के लिए कह देगा।" और वे कपड़े बदलने में लग गये।

गौरी बाबू अभी अपने बालों में कंघी कर ही रहे थे कि उनकी पत्नी आ गईं। आते ही उन्होंने कहा —"चलिए न, ज्यादा देर हो गई है।"

"चलिए।" गौरी बाबू ने कहा और अपनी पत्नी के साथ चल दिये। मकान से बाहर बरामदे में आते ही उन्हें गाड़ी मिली और पिछली सीट का दरवाजा खोलकर पति और पत्नी अन्दर बैठ गये।

सोफर ने गाड़ी स्टार्ट की और स्टेयरिंग दबाते ही गाड़ी हवा से बातें करने लगी। थोड़ी देर बाद गाड़ी ने अस्पताल के अहाते के भीतर, फाटक से जैसे ही प्रवेश किया कि सीढ़ियों से उतरकर डा० साहब गाड़ी के पास पहुँचे और दोनों हाथ जोड़ दिये, "नमस्ते।"

गौरी बाबू की पत्नी ने गाड़ी से उतरकर डाक्टर के 'नमस्ते' के जवाब में केवल दोनों हाथ जोड़ दिये। लेकिन उन्होंने कहा — "नमस्ते! आपका मेरे ऊपर ध्यान रहता है।" और न्यायाधीश महाशय मुस्कराये⋯।

डाक्टर साहब के साथ दोनों पति-पत्नी अस्पताल के अन्दर गए और तीनों ही एक-एक कुर्सी पर बैठ गए। कमरे में जाते समय एक चपरासी से डाक्टर साहब ने कुछ इशारे से कहा था, जिसका आशय समझने के बाद वह वहां से चला गया था।

कमरे में मौन छाया था। चारों ओर निस्तब्धता का राज्य था, जबकि कभी-कभी बोतलों और शीशियों की खनखनाहट की

आवाज वातावरण को भंग कर देती थी। गौरी बाबू शांत थे। उन के हृदय में कोई हलचल नहीं थी। डाक्टर साहब रह-रहकर कमरे से बाहर दरवाजे की ओर देख लेते थे, शायद उन्हें किसी का इन्तजार था। पर गौरी बाबू की पत्नी रह-रहकर चारों ओर कौतूहल और आश्चर्य से देख लेती थी। उन्हें इन्तजार करना असह्य-सा लग रहा था। उतावली और जल्दी के कारण वह कुर्सी से थोड़ा उठ भी जाती थीं।

थोड़ी देर के बाद एक चपरासी एक सुन्दर और फूल-सी कोमल गोरी-चिट्टी लड़की को गोद में लेकर कमरे में आया। "तो यही है वह बच्ची।" न्यायाधीश महाशय ने कहा।

"जी हां।" डाक्टर साहब ने जवाब दिया।

गौरी बाबू ने अपनी पत्नी की ओर देखा, जो अब प्रौढ़ावस्था को पार करती दिखाई दे रही थी। आँखों का देखना शायद उनकी पत्नी का एक संदेश था। क्योंकि उसी समय वहां से उठकर वह बच्ची के पास आईं और दोनों हाथ फैलाकर कहा—"आओ, मेरी गोद में।"

बच्ची ने एक बार चपरासी की ओर देखा, तत्पश्चात कहने वाली की ओर देखकर उसकी गोद में चली गई।

गौरी बाबू की पत्नी बच्ची को गोद में लिये ही कमरे से बाहर आईं और बच्ची से पूछा—"मेरे साथ रहोगी ?"

वह अबोध, अज्ञान बालिका इस तरह की बातों को क्या समझे। वह तो एक बंदर के समान थी, जिसे जो प्यार करेगा, खाने को देगा, उसी की ओर आकर्षित होगी। वह उनकी गर्दन से जा लगी और मुस्कराकर बोली—"हां।"

गद्‌गद् हो गईं, गौरी बाबू की पत्नी श्रीमती स्वरूपा देवी। उन्हें लगा जैसे सारा स्वर्ग इस समय धरती पर उतरकर उनकी गोद में सिमटकर बैठा हो और अब उन्हें किसी प्रकार का दुःख, जरा

ग्रौर व्याधि नहीं है। वह हर प्रकार से सुखी है। "मेरे घर भी चलोगी ?" उन्होंने एक यह भी प्रश्न किया।

उस समय वहां अधिकांशतः सन्नाटा-सा था। मगर 'आउट-डोर' के पास दवा लेते हुए एक अश्वरोगी नजर ग्रा रहा था। बच्ची ने उधर देखा ग्रौर नीचे उतरने के लिए मचलने लगी—"हां।"

बच्ची डेढ़ वर्ष की तो थी ग्रौर वह ग्रपनी मां को ग्रच्छी तरह पहचानती भी होगी, लेकिन उसको ग्रपनी मां कहीं दिखाई नहीं पड़ रही थी। इस उम्र में बच्चे माता के, प्यार ग्रौर स्तन के दूध के कारण ही उसकी ग्रोर दौड़ते हैं। ग्रौर किसी की ग्रोर, माता की भांति, आकर्षित नहीं होते। इसीलिए तो कहा गया है—स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।

श्रीमती स्वरूपा देवी पुनः कमरे में लौट गईं ग्रौर कुर्सी पर बैठ गईं। उनका हृदय बच्ची की ग्रोर से पूर्णतया सन्तुष्ट हो गया था। उनके हृदय ने ग्रात्मिक गवाही दे दी थी कि बच्ची को ग्रपने साथ रखा जा सकता है। सामने ही मेज पर बिस्कुटों का एक डिब्बा रखा था। उसमें से कुछ बिस्कुट निकालकर उन्होंने बच्ची को खिलाना ग्रारम्भ कर दिया।

डाक्टर साहब एकदम से मौन थे। परन्तु सोच रहे थे कि शायद बच्ची को ले जायें या नहीं। यदि ग्रपने साथ रखना स्वीकार नहीं किया तो एक जटिल समस्या उनके समक्ष ग्रा खड़ी होगी। लेकिन उस बच्ची से श्रीमती स्वरूपा देवी का ग्रपना-सा लगाव ग्रौर खिंचाव देखकर उन्हें कुछ संतोष था। उन्होंने कहा—"इसकी मां शिक्षित थी।"

गौरी बाबू ने इस बार डाक्टर साहब की ग्रोर देखा ग्रौर तब बाद में ग्रपनी पत्नी की ग्रोर। जैसे वे कह रहे हों कि इसकी मां पढ़ी-लिखी ग्रौरत थी। ग्रतः इस ग्रबोध ग्रौर निर्मल बालिका को रखने में कोई हर्ज नहीं होगा।

उसी समय श्रीमती स्वरूपा देवी ने उठते हुए कहा—"बहुत कृपा की हमारे ऊपर, डाक्टर साहब आपने।... अब चला जाय।" उनका यह इशारा शायद अपने पति की ओर था।

"आप लोगों के लिए मैंने चाय का प्रबन्ध किया है।" डाक्टर ने कहा।

"फिर कभी देखा जाएगा।" और गौरी बाबू उठ खड़े हुए यह देख डाक्टर साहब भी कुर्सी छोड़ दिये। तीनों बाहर आये। मोटर के पास जाते हुए गौरी बाबू ने कहा—"कचहरी में हम इस बच्ची को रखने की रजिस्ट्री करा देंगे। अतः गवाही के समय थोड़ी देर के लिए आपको कष्ट दूंगा।"

इसके जवाब में डाक्टर ने मुस्कराकर दोनों हाथ जोड़ दिए, क्योंकि गौरी बाबू और उनकी पत्नी मोटर की पिछली सीट पर बैठ चुके थे। बच्ची श्रीमती स्वरूपादेवी की गोद में थी। वह खुश नजर आ रही थी।

गौरी बाबू ने भी अपने दोनों हाथ जोड़ दिये और मोटर रवाना हो गयी।

इस बच्ची का नाम रखा गया—सविता। सविता गोरी और सुन्दर बालिका थी। यहां आने पर इसको भोजन और पहनावे में डुबो दिया गया था, इस कारण इसके रूप में पहले से कुछ अधिक निखार आ गया था। न्यायाधीश महाशय की सविता पर ज्यादा कृपा रहती थी। कोई वस्तु बर्बाद कर देती तो वे एकदम ही ध्यान नहीं देते थे। एक बच्चे की किलकारी चारपाया, होकर चलना इत्यादि से परिवार अमनचैन में हो गया। जो अभाव था, उसकी पूर्ति एक हद तक हो गयी थी।

प्रकृति की लीला भी विचित्रताओं से भरी हुई है। कुछ न दिया तो न सही, मगर देना आरम्भ किया तो छप्पर फाड़-फाड़कर देता चला गया। एक साल बाद श्रीमती स्वरूपा देवी के गर्भ से भी

एक बच्ची जन्मी जिसका नाम रखा गया सावित्री ।

अपनी सन्तान न होने के कारण तो इन्होंने सविता को गोद लिया । फिर प्रकृति ने सावित्री को क्यों भेजा ? जब सावित्री को श्रीमती स्वरूपा देवी के गर्भ से जन्म ही देना था, तब सविता को और इनको आकर्षित क्यों किया ? लेकिन इन दो प्रश्नों का जवाब मानव के पास नहीं हो सकता । यहीं पर मानव प्रकृति से हार मान जाता है ।

सविता बड़ी थी, सावित्री छोटी । दोनों का पालन-पोषण एक साथ ही होने लगा । दोनों की सुन्दरता और जोड़ी बेजोड़ थी । जो कोई देखता, यही कहता था कि दोनों बहनें ही हो सकती है ।

गोरी बाबू की अधिक कृपा का पात्र सविता बनती । श्रीमती स्वरूपा देवी सावित्री के जन्म से अधिक प्रसन्न हैं, किन्तु…

मां होने के नाते स्वरूपा देवी का ध्यान सावित्री पर अधिक रहता था । मगर वह देखती कि उसके पति का ध्यान या दिलचस्पी सविता पर अधिक रहती है । कुछ दिनों बाद इसके लिए कभी-कभी आपस में कुछ कहा-सुनी भी हो जाती थी, तब गोरी बाबू चुप रह जाते थे ।

दोनों बहनें ज्यों-ज्यों बड़ी होती जा रही थीं, त्यों-त्यों घर चुहलबाजी एवं अठखेलियों से गुलजार होता जा रहा था । जीवन भर का तरसता हुआ मानव प्रकृति की विचित्र लीला को देखकर तृप्त हो गया । जो मात्र एक बच्चे की किलकारी के लिये ललचता था, उसने दो-दो बच्चों की किलकारियां देखीं और सुनीं । मानव की चिर-वांछित अभिलाषा पूरी हुई ।

सावित्री की आयु जब छः वर्ष की हो गयी तो दोनों बहनों को पाठशाला भेजा गया । दोनों एक साथ ही मोटर से पाठशाला जातीं और साथ ही लौटतीं । घर पर पढ़ाने के लिए भी एक अध्यापिका नियुक्त कर दी गई ।

समय ने पलटा खाया । दिन बीते । रातें गुजरीं । कई बसन्त चले गये । जाड़ों की गिनती न थी । लाखों मानव इस धरती पर से उठ गये और डालियों में कई लाख नये, कोमल और सुगंधयुक्त फूल खिले और देखते ही देखते दो-चार-आठ साढ़े नौ साल बीत गये। सविता अब साढ़े चौदह साल की तथा सावित्री दस साल की हो गयी थी। उनके बचपन ने बाला का रूप बदला और बालायें अब कुमारियां होने जा रही थी।

एक दिन शाम को कचहरी से लौटने के बाद गोरी बाबू बाहर लॉन पर कुर्सी डालकर बैठे अपना मन बहला रहे थे। आज उन्होंने एक केस का अन्तिम निर्णय दिया था। फैसले के पक्ष में एक युवती की जीत हुई थी, जो असहाय थी, अनाथ थी। उसको कुछ बाजारू लोगों द्वारा उसके एक संबंधी की सहमति से डरा-धमका कर उसकी जायदाद हड़पने और अनैतिक व्यवहार करने के लिए मजबूर किया जा रहा था। युवती की ओर से कोई गवाह न था । वह एकदम अकेली थी। उसका वकील भी उसकी पूरी तरह मदद नहीं करता था। दूसरी ओर से लोग काफी थे। सभी उसको बर्बाद करने पर तुले थे। कानून के सही माने जाने पर भी, युवती की मजबूरी ने गोरी बाबू को बेचैन कर दिया । तब उन्होंने उस युवती के पीछे अपना एक विश्वासपात्र लगा दिया ताकि असलियत का पता लग सके। विश्वासपात्र ने कई आदमियों को उस युवती के घर जबर्दस्ती प्रवेश करते देखा था और यह भी देखा था कि पड़ोसियों ने उसकी कुछ भी मदद न की थी। जो लोग उसके घर में आते-जाते उनका नाम युवती ने अदालत में दिया था और प्रार्थना की थी कि नाजायज व्यक्तियों से उसको छुटकारा दिलवा दिया जाय, ताकि शेष जीवन वह चैन से गंवा सके। फैसले में उसकी जीत तो हुई थी। साथ ही विपक्ष के नामजद सभी आदमियों को अदालत से चेतावनी दे दी गई थी कि यदि कभी किसी बेजा हरकत की शिकायत

युवती ने अदालत में की तो उसकी सुनवाई सरकार की ओर से की जायेगी।

युवती के धन पर खतरा तथा अस्मत पर डकैती होने की आशंका थी, गोरी बाबू को। आज उसी केस का इसी तरह फैसला सुनाकर वे घर लौटे थे। वे प्रसन्न मुद्रा में थे उस समय। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि एक अबला की रक्षा उन्होंने की है।

सूर्य ढल रहा था। दिन समाप्त हो रहा था। शाम [illegible] गई थी। मन्द-मन्द समीर बह रहा था। पक्षी अपने-अपने घोंस[illegible] की ओर जल्दी से लौट रहे थे। पेड़ों पर लालिमा फैलती नजर आने लगी थी। उनकी नजरें बाहर फाटक की ओर योंही लगी थीं। तभी पन्द्रह वर्ष का एक बालक उनकी ओर आता दिखाई दिया। घुटनों तक धोती पहने, आधी बांह की कमीज डाले तथा कन्धे पर गमछा डाल रखा था उसने। इस लड़के को देखकर न्यायाधीश महाशय के मन में कोई खास भाव नहीं जगा। कारण कि यह क्षेत्र वास्तव में एक निरा देहाती क्षेत्र था। यहाँ अधिकतर गरीब और भोले किसान ही बसते थे जिनका पहनावा ही यही था। अदालत में वकीलों, पेशकारों अथवा मुहर्रिरों को छोड़ प्रायः सभी के पहनावे में कोई खास अन्तर दिखाई नहीं देता था। कोई-कोई तो अपने साथ एक हल्का डंडा भी रखता था।

वह लड़का सहमे हुए कदमों से चलकर, धीरे-धीरे गोरी बाबू के पास आया और एक लम्बी सलामी देने के बाद हाथ ज[illegible]कर खड़ा हो गया।

न्यायप्रियता के साथ ही दयालुता में भी इनको ख्याति [illegible]प्त हो चुकी थी। इन्होंने कितने ही आदमियों, गरीब मजदूरों एवं असहाय औरतों की रोटी का प्रबन्ध करवा दिया था। इनका [illegible]हना था—यदि किसी को किसी काम में लगवा दिया जाय तो उसके लिये लाभकर ही होगा और अपने राम का कुछ बिगड़ेगा नहीं।

तब क्या हर्ज हो सकता है। उन्होंने उसकी ओर देखकर पूछा—"क्या है ?"

"सरकार !" और वह एक प्रकार से गिड़गिड़ाकर रह गया।

"कुछ कहो ! मैं यथासाध्य तुम्हारी सहायता करूँगा।" और गोरी बाबू ने उसकी ओर देखा। आह आदमी भी इतना सुन्दर हो सकता है, उन्हें आश्चर्य हुआ। अब तक उन्होंने सुना या देखा था कि औरतें ही सुन्दर, गोरी और गुलाब के फूल की पंखुड़ियों के सदृश सुन्दर होती हैं, पर एक पुरुष भी इतना सुन्दर हो सकता है। वे चकित से [illegible] उसकी ओर देखते ही रहे। पलकों का बन्द करना भी उस समय अन्याय करना हो सकता था, उससे बातें न करना, दिल की भावनाओं के साथ धोखा करना हो सकता था। इतना सुन्दर ! इतना आकर्षक ! वह भी गरीब के घर में, अनपढ़ [illegible] और दूर देहात में। गुदड़ियों में ही लाल दिखाई देते हैं। प्रकृति की छटा अजीब निराली है। जो न कर दे, थोड़ा है।

गोरी बाबू के इतना आश्वासन देने पर भी उस सुन्दर और अजनबी लड़के ने अपने हृदय का भाव उड़ेला नहीं। वह हाथ जोड़कर खड़ा ही रहा।

"तुम क्या चाहते हो ?" इस बार गोरी बाबू ने साफ-साफ उससे पूछा। उन्होंने सोचा—शायद यह संकोच से कुछ न कह सके।

"सरकार ! आपकी दया ही काफी है।" लगता था, गरीबी के कारण वह भी बोलने में चतुर हो गया था। वह साफ-साफ तो कुछ नहीं कह रहा था, लेकिन जो कुछ कह रहा था उससे गोरी बाबू की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी और बढ़ रही थी उसके प्रति उनकी सहानुभूति !

"फिर भी तुम जो चाहते हो, सो कहो।"

"गांव वालों ने मुझे मार-पीट कर भगा दिया है। उनका कहना था कि यह करो, वह करो। यहां जाओ, वहां जाओ और दिन भर बैल की भांति बेगारी करो। मगर बदले में भरपेट भात भी खाने को नहीं देते थे।" वह सुन्दर लड़का कहने लगा—"आज दो दिनों से शहर में भटक रहा हूं। कहीं काम-धाम नहीं मिला। एक जगह काम भी मिला तो यह कहकर भगा दिया गया कि यह देहात का निरा गंवार है। काम-धाम कुछ न कर सकेगा।"

गंवार और देहाती लड़के की इस बात ने गौरी बाबू को उद्वेलित कर दिया कि आजादी के बीस वर्ष बाद भी आज बेगार की प्रथा इस देश में चालू है। काम के बदले में पेट भर भोजन भी नहीं मिलता। क्या देहातों तक आवाज नहीं पहुंच सकी है ? यह कैसी स्वतंत्रता ? क्या महान् नेहरू की यही है आधुनिक भारत की रूप रेखा, जहां आदमी की कीमत पशु से भी कम है ? क्या आज के नेताओं के पास ऐसा कोई विचार नहीं, जहां इनकी गुजराई हो सके ? देश के नेताओं पर उनको क्रोध हुआ। थोड़ी देर बाद वह मुस्कराये। सोचा—यह दुनिया है और यहां का हर एक जीव स्वार्थ में अन्धा है। अपने धंधे के आगे किसी और के दुःख-दर्द का कोई मूल्य नहीं। पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"मां मुझे सखीचंद कहती थी।" सरल शब्दों में उसने कहा।

"गांव में और कौन-कौन है तुम्हारे ?"

"सरकार, अपना कोई नहीं।" सखीचंद ने कहा—"जगदीशपुर में एक बहन ब्याही है, किन्तु पाहुने इतने नाराज हैं कि मां के मर जाने के बाद भी बहन को हमारे गांव नहीं जाने दिया।"

गौरी बाबू ने सोचा—आदमी का कर्त्तव्य इतना नीच हो गया है कि दुख पड़ने पर या गरीबी छाने पर वह अपनों को पूछता तक भी नहीं। क्या मानवता या इन्सानियत नाम की कोई चीज संसार

में अब नहीं रह गयी ? लोग चौबीसों घण्टे स्वार्थ में ही डूबे रहते हैं ? इससे क्या फायदा ? मरने के बाद क्या वह अपनी कमाई की सारी वस्तुओं को अपने साथ ले जायेगा ? नहीं । तब यह जाल, प्रपंच, धोखा और स्वार्थ किसके लिए ? आज का आदमी एकदम कर्त्तव्यच्युत हो गया है। पूछा—"तुम काम करना चाहते हो ?"

"जी, सरकार ।" उसने कहा—"आप ही मेरे माई-बाप हो जाइये ।"

"मेहनत करोगे ?" न्यायाधीश महाशय ने पूछा।

"सरकार !" सखीचंद ने कहा—"वह तो दो-एक दिन में दिखाई देने लगेगा" और हाथ जोड़कर खड़ा-खड़ा ही इन्तजार करने लगा कि अब क्या होता है। उस लड़के को कुछ आशा तो बंधी कि अब उसको शायद भटकना नहीं पड़ेगा।

गौरी बाबू ने किसी को आवाज दी—"रामपूजन···।"

"आया हुजूर···!" और कहने के साथ ही एक दुबला-पतला आदमी हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया—"जी सरकार!"

"इस लड़के को अपने साथ रखो।"

"जी अच्छा !"

"पहले तो इसे भरपेट खाना खिलाओ। काम कल से लेना और हाँ कल शाम को बताना कि इसका काम कैसा है ?" गौरी बाबू ने कहा और उठकर अन्दर चले गये।

पाँच

प्रकृति का कुछ नियम ही ऐसा है कि यदि कोई वस्तु सुन्दर हो, अति सुन्दर हो और काम के लायक हो तो वह लोगों को अपनी ओर खींचती है। यहां भी सखीचंद के साथ कुछ ऐसा ही हुआ।

सखीचंद काफी सुन्दर और खूबसूरत था। हाथ-पांव कोमल-कोमल और मुलायम थे। उसकी आंखें बड़ी-बड़ी और भूरी थीं। उसकी नाक ऊंची उठे तथा सीधे थे। उसके होंठ पतले और लाल-लाल थे, बरौनियां काली तथा भौंहें धनुष के आकार की थीं। सिर के बाल काले और घुंघराले थे। ललाट चौड़ा था, उनका। सब देख सुनकर लगता था, वह रबड़ या प्लास्टिक की मूरत हो, जिसका निर्माण मनुष्य ने अपने उपयोग के लिए किया है, जो सुन्दरता की टांग तोड़ सकता है।

रामपूजन ने न्यायाधीश महाशय को अपनी रिपोर्ट दे दी थी कि सखीचंद काम करने में अद्वितीय है। जो काम उसे सौंपा जाता है, दम नहीं लेता है तथा अपना काम ईमानदारीपूर्वक सम्पन्न करता है।

बड़े घर की लड़कियां होने के कारण सविता और सावित्री कुछ ढीठ हो गई थीं। इस कारण कि उन पर परिवार के सदस्यों द्वारा अंकुश नहीं लगाया जाता। गरीब घराने की लड़कियों एव लड़कों पर अंकुश लगाया जाता है और हर समय भली और बुरी चीजों का ज्ञान कराया जाता है ताकि सन्तान सही रास्ते पर जाय'

इस कारण अमीर घराने की सन्ताने अपनी इच्छा पर चलने की आदी हो जाती है, जिनके कारण वे हठी और जिद्दी हो जाती हैं। क्योंकि बचपना न्याय-अन्याय नहीं पहचानता और बचपन की बातें एक दिन आदत बन जाती है, जो जीवन-पर्यन्त छूटती नहीं। सविता और सावित्री, सखीचंद से लगी रहती थी। पर सखीचंद यह जानकर कि मालिक की सन्तान एवं बड़े घर की लड़कियां है, चुप ही रह जाता था।

असल मे सखीचंद की बेहद सुन्दरता ने सविता और सावित्री को मोह लिया था। जब माली बाग में नहीं होता, न्यायाधीश महाशय नहीं होते, तब दोनों बहनें, सविता और सावित्री सखीचंद के पास आतीं और उसको मनोरञ्जन हेतु छेड़ती—"सखीचंद! गुलाब का पौधा किस तरह लगाया जाता है?"

सखीचंद की ओर, उनका, आकर्षित होने का एक और प्रमुख कारण था—उसका भोलापन! उसकी नासमझी!

उनके इस तरह के ऊटपटांग प्रश्नों का जवाब सखीचंद नहीं देता था। कुछ तो भोलापन के कारण और कुछ लिहाज के कारण सोचता—बड़े घर की बात है। दूसरे मुझे भूखों मरने से इनके पिता ने बचाया है। सखीचंद दोनों को अब तक सगी बहने ही समझता था। वह आश्चर्य से, कीमती साड़ी या फिराक-कमीज में लिपटी गुड़िया-सी अनमोल सुन्दरता को देखता रहता। तभी कभी-कभी उससे दूसरा प्रश्न करती—"आलू कब और किस तरह रोपा जाता है?"

इसके जवाब में भी वह उन लड़कियों की ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगता।

अक्सर थोड़ी देर इसी तरह चुहलबाजी करने के बाद दोनों बहनें एक ही साथ वापस लौट जाती थी। उनका मन बहल जाता

और वह चली जाती थीं। परन्तु सखीचंद कुछ समझ नहीं पाता कि आखिर ये लड़कियां उससे ऐसा प्रश्न क्यों पूछती हैं। हालांकि उसके ख्याल में यह प्रश्न बेतुका नहीं था। और सखीचंद के पास भी इसका उचित उत्तर न था। वह जाति का माली था पेशे से माली न था, लेकिन लड़कियां उसे माली ही समझ रही थीं। वह गांव का भोला-भाला युवक (अब) शहरी वातावरण से एकदम अनभिज्ञ था। काम की तलाश में दो दिन घूमने के बाद वह शहर से भय भी खाने लगा था। वह अपने गांव को ही अच्छा समझता था। यदि गांव वाले कुछ सम्पन्न किसान बेगार लेकर उसे तंग न करते तो शायद वह शहर से दूर ही रहता। किन्तु स्वभाव, रहन-सहन और बातें करने का ढंग बिल्कुल ही देहाती था, उसका। उसको जो भी काम रामपूजन सौंपता, उसी के करने में वह लगा रहता था। न तनिक आराम और न जरा-सा चैन! जब तक उस काम को पूरा न करता, वह आराम को हराम समझता था।

इसी कारण गौरी बाबू और उनकी पत्नी श्रीमती सरस्वतीदेवी उससे ज्यादा प्रसन्न थे।

न्यायाधीश महोदय की कोठी के चारों ओर एक तरह का बाग लगवाया गया था। अधिकतर छोटे-छोटे पौधे ही लगाए जाते थे, जिनमें अधिकांश: फूल ही होते थे। हां, पहले के कुछ पेड़ थे, जिनकी छाया काफी शीतल और आराम देने वाली होती थी। गौरी बाबू स्वयं ही प्राकृतिक दृश्यों के प्रेमी थे। सरकार की ओर से एक माली उन्हें मिला ही हुआ था, मगर इतनी सारी व्यवस्था उन्होंने अपने ओर से की थी और अब तो सखीचंद भी रामपूजन की सहायता करता था।

गर्मी का दिन था। भोजन करने के पश्चात वह वहां से हटकर एक आम के पेड़ के नीचे गमछा बिछाकर उस पर लेट गया। दोपहर

हो गई थी। सर्वत्र गरम-गरम हवा चल रही थी, जिसमें एक मस्ती थी, जिसमें मदहोश करने की एक दवा-सी मिली हुई ज्ञात होती थी। आलस के कारण उसे झपकी आने लगी और ठंडी हवा ने उसे थपथपाकर सुला दिया और वह सो गया।

थोड़ी देर बाद सविता और सावित्री घूमते-घामते उसके पास पहुंची और वहां खड़ी हो गयीं। दोनों ने देखा—सखीचंद नींद में सो रहा था।

"सखीचंद!..." सविता ने उसको जगाना चाहा।

वह सो रहा था, अतः इनको जवाब नहीं मिल सका।

"सखीचंद!..." इस बार आवाज देने के साथ ही सविता ने उसका हाथ पकड़कर हिलाया भी, ताकि वह जाग सके।

सखीचंद की नींद टूट गयी। उसने देखा— दोनों बहनें सामने ही खड़ी हैं। वह उठकर बैठ गया। समझा इस बार भी यह मुझे तंग करेंगी, परेशान करेंगी और सदा की भांति यहां से तिरोहित हो जायेगी। वह चाहता था कि इनसे पिंड छूटे। मगर चाहने से नहीं होता। वह जहां भी जाता था, दोनों बहनें समय पाकर पहुंच ही जाती थीं। सखीचंद इनको डांट भी तो नहीं सकता था। डरता था। कहीं यह बुरा मान गई और अपने पिताजी से कह दिया तो......

तब भी उसने उनसे पूछा—"क्या है मालकिन! मालिक बाबू मुझे बुला रहे हैं, क्या?"

उसके इस प्रश्न पर दोनों बहनें मुस्कुराई। उनका इस तरह मुस्कराना, सखीचंद को लगा कि वे इसको बेवकूफ समझती हैं, मूर्ख समझती हैं। उनको समझाना तो तो सखीचंद के बस की बात नहीं थी। वह दोनों उसके अगल-बगल बैठ गई और कहा—नहीं!"

वह हक्का-बक्का होकर दोनों की ओर बारी-बारी से देखने लगा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस समय वह क्या उपाय करे ताकि इनसे जान बच सके, तभी सविता ने, जो सावित्री से ढाई वर्ष बड़ी थी और ज्यादा चंचल थी, पूछा—"सखीचंद, तुम्हारी शादी हो गई है?"

इस प्रश्न के जवाब में सविता की ओर देखा, सखीचंद ने।

"शादी करोगे?" सावित्री ने इस बार प्रश्न किया।

सखीचंद ने अपना सिर झुका लिया और धीरे से कहा—"नहीं।"

इस उम्र में शादी की बातें करना उचित नहीं होता। इस कारण नहीं कि यह बुरी बात है बल्कि इस कारण कि शादी की बात या अभ्यास की जंजीरों में जो आनन्द है वह सारे मस्तिष्क, शरीर और मन को उद्वेलित कर देता है। उस वक्त उचित और अनुचित का ज्ञान मनुष्य में नहीं रह जाता। सखीचंद शादी होना जानता था, मगर उसकी जंजीरों में जो मजा निहित था, उसका ज्ञान उसे तनिक भी नहीं था। उसने विचार में शादी की बात लाई ही नहीं थी, अब तक। मगर लड़कियां कुछ पढ़-लिखकर शादी की बात जान गई थीं। चिंता थी ही नहीं; खाने-पीने का आराम था, अतः शरीर की बाढ़ ने ही उनको कुछ होशियार बना दिया था। उनके अन्दर से संकोच जाता रहा था। तभी सविता ने कहा—"धत्! पगला कहीं का। कहीं पुरुष शादी से भागते हैं?...भागती तो हैं औरतें; जिनके पास......!" वह भी न जाने क्यों चुप रह गई।

सखीचंद ने कुछ नहीं कहा।

"समझे?" सावित्री ने कहा और उसका हाथ पकड़कर प्यार

कन्धे पर रख लिया।

कुछ लाज और कुछ भय के कारण सखीचंद अपना हाथ सावित्री के कन्धे पर से नहीं खींच सका और उसकी सिधाई और चुप्पी ने सविता को हिम्मत दी और वह उसके पैर पर सिर रखकर घास पर लेट गयी।

दोनों बहनें जैसा चाहती थीं, सखीचंद वैसा ही करता जाता था। अपनी ओर से उसने कभी कुछ नहीं किया या कहा। गांव का बेचारा……

सविता और सावित्री, दोनों बहनों के लिए ऐसा करना एक खेल के समान हो गया था। वह सखीचंद से घृणा नहीं कर सकीं। हालांकि वह इनकी तरह साफ धुले हुए और कीमती कपड़े नहीं पहनता था और न स्नो, पाउडर या इत्र का ही व्यवहार करता था। उसने कभी अपने बालों में कंघी तक नहीं की। छोटे-छोटे घुंघराले बाल थे। वह उन्हें योंही छोड़ देता था मगर उसकी सुन्दरता ने इनको मोह लिया था।

सखीचंद भी अब इनके सामने शरमाता नहीं था, काफी खुल गया था। धीरे-धीरे यह भावना कि यह मालकिन की बेटी हैं, जाती रही थी। वह भी इन्हें हमजोली समझ गया था। इनके साथ खेलना सखीचंद को भी अच्छा लगता था। कभी-कभी उसके अन्दर एक गुदगुदी पैदा हो जाती थी, जिसे वह आज तक नहीं समझ सका। एक तरह से वह इन दोनों बहनों का इन्तजार भी करता था, मगर असल में वह नहीं चाहता था कि ये लड़कियां उसके पास आयें और इस तरह का व्यवहार करें। इसी प्रसंग में एक दिन सखीचंद ने भी पूछ ही लिया—"आप लोग मेरे साथ शादी करेंगी?" प्रश्न तो उसने ठीक ही किया था, लेकिन उसको इतना ज्ञान न था कि धरती की धूल होकर उसने आकाश के तारों

को तोड़ने की चेष्टा की थी। झोंपड़ी के रहने वालों ने महलों के रहने वालो की बराबरी चाही थी। यदि इतना ज्ञान सखीचंद को होता तो वह इस तरह का प्रश्न ही नही करता।

दोनों बहनों ने एक-दूसरे की ओर देखा जैसे वह आपस में पूछ रही हों कि अब इस प्रश्न का जवाब क्या दिया जाएगा। वह इसको गूंगा, गंवार और निरा देहाती ही समझती थीं। मगर उसके इस प्रश्न ने उनको इस समझ का जवाब दे दिया था। फिर भी स्वतन्त्र हवा में विचरने वाली लड़कियों ने खुले दिल से जवाब दिया—"हां, करेंगी।"

सखीचंद ने ऊपर पेड़ की ओर देखा। वह आम का पेड़ था। उसी समय एक पका हुआ आम उसके पास ही आ गिरा। उसने उसको उठा लिया और ध्यान से देखने लगा।

सविता ने पूछा--"तुम किसके साथ शादी करोगे?...मेरे साथ या फिर सावित्री के साथ?"

उसने दोनों की ओर देखा। मगर निर्णय नहीं कर सका कि वह किसके साथ शादी करेगा। अत: उसने कहा--"दोनों के साथ।" वह एक के साथ शादी की बात कहकर दूसरे को नाराज भी तो नही न करना चाहता था।

"कही एक पुरुष दो स्त्रियों के साथ एक ही बार विवाह कर सकता है?" सविता ने पूछा—"तुम्हारे गांव में ऐसा होता था, क्या?"

"नहीं, ऐसा तो कभी नहीं हुआ?"

"फिर?" सावित्री ने कहा—"तुम ही बताओ कि तुम हम दोनों में से किसके साथ विवाह करना चाहते हो।"

"मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता।" और सखीचंद पका हुआ आम मुंह में डालकर चूसने लगा।

"साफ-साफ कहते हुए क्या तुम्हें शरम लगती है ?" सावित्री बोली और सखीचंद के हाथ से ग्राम छीन कर दूर फेंक दिया।

अन्दर ही अन्दर सखीचंद काफी प्रसन्न दिखाई दे रहा था। शायद उसे भी आनन्द आने लगा था। जीवन में कभी भी इस तरह की सुन्दर लड़कियों के सम्पर्क में इस तरह नहीं आया था, आज उसके रोयें खड़े हो गए थे। शरीर पुलकित हो रहा था, उसका। उसने कहा--"आप ही लोग निर्णय करें कि यदि एक के साथ शादी होगी, तो कौन शादी करेगा।"

"मैं!" और सविता ने अपने हाथ से अपनी ओर इशारा किया।

"नहीं, मैं!" तभी सावित्री ने भी कहा। और वह भी सखी-चंद की दूसरी जांघ पर सिर रख कर घास पर लेट गयी।

दोपहर मौन था। हवा 'सांय-सांय' कर बह रही थी। चारों ओर का वातावरण शांत था, मरघट की तरह रेगिस्तान की भांति, कभी-कभी कौवों की 'कांव-कांव' की कर्कश ध्वनि वातावरण की शांति को झकझोर रही थी। धूप तेज थी।

"तुम शांत क्यों रहते हो, सखीचंद ?"

"शांत ?" सखीचंद ने अपनी उंगलियां सविता के बालों में डाल दीं और एक लम्बी सांस लेकर कहने लगा—"हम गरीबों को शांत रहना चाहिए। हम कभी भी चंचल नहीं हुए, क्योंकि रोटी-कपड़े की चिंता में ही सारे दिन और रात गुजर जाते हैं। इसके सिवा कुछ भी सोचना हमारे वश की बात नहीं होती।"

"तुमसे हमारा इस तरह लगे रहना, क्या तुम्हें अच्छा लगता है ?"

सावित्री के बाल पकड़कर खींचता हुआ वह कहने लगा—"यह

तो मैं नहीं जानता। किन्तु पहले या अब भी मैं चाहता हूं कि आप दोनों बहनें मेरे पास न आयें। पर कुछ दिनों से मन का एक कोना आप लोगों को देखने को आतुर रहता है। आप मेरे पास रहती तो न जाने मुझे कैसा-कैसा ख्याल आने लगता है। इसमें कुपंत पाते ही एक भय-सा छा जाता है, मेरे मस्तिष्क पर। डरता हूं कि यदि रामपूजन भइया या मालकिन या मालिक बाबू ने ऐसा करते देख लिया तो हमारी खैर नहीं। मैं गरीब कहीं का नहीं रह जाऊंगा मालिक बाबू मुझे यहां से निकाल देंगे।" और वह अधिक गम्भीर हो गया। उसने सविता का सिर अपनी जांघ से हटाकर जमीन पर रख दिया, फिर सावित्री का सिर भी अपनी जांघ पर से हटा दिया और दोनों पैर समेट तथा शरीर को सिकुड़ा कर कहा—"आप लोग मेरे पास न आवें तो अच्छा है। मैं गरीब हूं। गांव में मेरा कोई नहीं है। मालिक बाबू ने कभी ऐसा करते देख लिया तो मैं भूखों मरने लगूंगा। आप लोग बड़े घर की प्यारी लड़कियां हैं, कोई कुछ न कहेगा। आप लोग ही तो मेरे पास आकर मुझे काफी परेशान करती हैं।"

सविता उठकर बैठ गयी और सखीचंद के कन्धे पर हाथ धरती हुई बोली—"कोई कुछ नहीं कहेगा, तुम्हें। तुम हमको बहुत ही अच्छे लगते हो।" और वह मुस्कुराई।

तभी सावित्री ने कहा—"तुम इतने, सुन्दर कैसे हो गए, सखीचंद! तुमको एक औरत होना चाहिये था, बस हमारी तरह।"

"आप लोग अब जाइएगा, समय काफी हो गया है।" सखीचंद ने कहा और चारों ओर देखने लगा। जैसे उसे आशंका हो रही हो कि यदि अब ये दोनों बहनें यहां से न गईं तो कोई-न-कोई आ ही टपकेगा और वह मुझ पर ही बिगड़ेगा। इन लड़कियों को

कोई कुछ न कहेगा।

"यदि तुम इस तरह कहोगे तो हम नहीं जायेंगी।" सविता ने कहा और सखीचंद की ओर सरक आयी।

सखीचंद ने सावित्री की ओर देखा।

सविता का इशारा पाकर सावित्री भी दूसरी ओर से सखीचंद की ओर खिसकी। दोनों बहनों के बीच सखीचंद दुबककर बैठा था। वह पसीने-पसीने हो रहा था। दिल कुछ और चाहता था और सामाजिक वातावरण कुछ और ही कह रहा था। अंत में उसने कहा—"आप लोग मुझे यहां से निकाल कर ही दम लेंगी।"

"तुम्हें कोई नहीं निकाल सकता!" सविता उठती हुई बोली—"तुम हमारे मन के राजा हो।"

सावित्री भी उठती हुई बोली—"तुम हमको बहुत ही अच्छे लगते हो।"

सखीचंद ने दोनों को देखा, जो उसके सामने खड़ी थी। दोनों कुछ-कुछ सयानी होती दीख पड़ी, उसे। शरीर दोनों का भरा हुआ लगा उसे।

"अच्छा हम फिर आयेंगी।" इतना कहती हुई दोनों बहनें घर की ओर दौड़ गयीं।

सखीचंद गंवार और सीधा उनको जाते हुए देखता रहा। सोचा क्या यह मुझे प्यार करती है? एक कथा सुनी थी, उसने कि एक परी ने एक लड़के से प्यार किया था। परी ही उसको खिलाती थी और अपने साथ रखती थी। वह जो भी चाहता, परी उसे लाकर देती थी। उसे किसी बात की चिंता न थी। मगर यहां तो......

मालिक और मालकिन से ज्यादा डर उसे रामपूजन भईया से लगता था। वह रामपूजन को भईया कहा करता था। मन ही मन

वह भय खाता था कि रामपूजन भईया को लड़कियों का मेरे साथ इस तरह मिलना कभी अच्छा नहीं लगेगा और वह मुझे जरूर डाटेंगे। इधर काफी दिनों से वह रामपूजन का स्वभाव कुछ-कुछ बदला हुआ देख रहा था। उसकी आवाज में कड़वाहट आने लगी थी। मगर मालिक बाबू के कारण वह ज्यादा कुछ नहीं कर सका था, अब तक।

उसकी बगल में रामपूजन कब से आकर खड़ा था, शांत। सखीचंद का मन स्थिर होते ही वह पलटा और अपने भईया को पास ही खड़ा देखकर स्तब्ध रह गया। वह खड़ा हो गया। उसने अपना सिर थोड़ा-सा झुका लिया लेकिन मुंह से कुछ नहीं कहा।

"सखीचंद!"

सखीचंद का शरीर कांप गया—"हां!"

"यह तुम क्या कर रहे हो?"

"...... ..." उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया।

रामपूजन ने कहा—"सरकार यदि यह सब अपनी आंखों से देख लेंगे तो तुम्हें जरूर गोली से उड़ा देंगे।"

उसने हिम्मत बांधकर कहा—"मेरा क्या दोष है भईया?"

"दोष तो तुम्हारा कुछ भी नहीं है, सखीचन्द!" रामपूजन माली ने कहा—"तुम जिस स्थिति में हो एक पुरुष वही करता जो तुम कर रहे हो। शायद तुमसे उसका पग आगे ही जा चुका होता, यह मैं जानता हूं कि तुम्हारी मिठाई और खूबसूरती ने उन दोनों को आकर्षित किया है, फिर भी परिस्थिति को समझते हुए तुम्हें सावधान रहना चाहिये।"

मैंने अपनी ओर से आज तक कुछ भी नहीं किया है, भईया।" सखीचंद सच्चाई को उगल रहा था—"जब देखो, वह मेरे पास आ

कर मुझे परेशान करती हैं। तंग करती हैं। कहती हैं, यह क्या है' वह क्या है ?" उसने रामपूजन की ओर दया की दृष्टि से देखा।

"तुम्हारी मजबूरियों को मैं अच्छी तरह समझता हूं।" रामपूजन उसकी दशा पर पिघल गया था। उसने अपना दाहिना हाथ सखीचंद के कंधे पर रख दिया और कहने लगा—"मगर तुम कौन हो, लड़कियां कौन हैं, यह भी तो समझो। अमीर लड़कियां चाहे जो भी कर्म क्यों न करे, उन्हें कोई दोषी नही ठहरा सकता, मगर गरीब लड़को ने जरा कोई बात की कि लोग उसे ही दोष देने लगते हैं। अतः न चाहते हुए भी तुम्हें ही सावधान रहना होगा। वह लड़कियां आजाद हैं, उनकी जो तबियत होगी, अच्छा या बुरा सब करेंगी। उन्हें कोई नही रोक सकता।"

"अब मुझे क्या करना चाहिए, भईया ?" अपनत्व की भावना और सच्चाई को प्रकट करने के कारण सखीचंद का मोह रामपूजन के प्रति बढ़ गया था। उसने कहा—"यह लड़कियां मेरा पिंड ही नही छोड़ती।"

"यह तो ठीक है मैं तुम्हें दोषी करार नहीं कर रहा हूं। फिर भी अब तुम्हे ही उनसे दूर रहना चाहिए।" रामपूजन ने कहा—"तुमको पहले ही उनको फटकार देना चाहिये था ताकि वह कभी तुम्हारे पास न आ सकें।"

"मुझसे कहा नही गया।" सखीचन्द ने कहा—"डर रहा था कि सरकार की लड़कियां हैं, कही बुरा मान गई तो गजब हो जाएगा।"

"गजब तो नहीं होता, परन्तु आज गजब होने की पूरी संभावना है।" व्यंग्य-मिश्रित शब्दों में माली रामपूजन ने कहा—"मैं तुमको आगाह कर दे रहा हूं। आगे तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।" और इतना कहकर वह वहां से चला गया।

दोपहर ढल चुका था, शाम का अवसान आ रहा था और सखीचन्द अकेला खड़ा था। चुपचाप। वह आगे बढ़कर पेड़ की जड़ के पास ही बैठ गया और सोचने लगा —बड़े घरों के लोग चाहे जो भी करें, उन्हें कोई दोषी नहीं ठहराता। क्यों ? क्योंकि उनके पास दौलत होती है और दौलत के ही कारण उन्हें लोग सम्मान देते हैं। शायद लोग सोचते होंगे कि बुरा करें या भला, यदि अपना मन इनकी ओर से फिरा लिया जाता है तो शायद इसमें कुछ स्वार्थ नहीं सध सकेगा और यदि इनको योंही छोड़ दिया जाये तो यह हमारी मदद धन से करता रहेगा। तो गरीब देश में धनी लोगों से गलतियां होती ही नहीं। यह भी एक विडम्बना ही है। गरीबी से जो भी फायदा न उठा लिया जाय। सखीचंद को एक घटना याद आ गई। उसके गांव के मुखिया की एक मात्र बेटी सुखिया एक चमार के छोकरे के साथ, जो उनका हल जोतता था, भाग गई थी दस दिनों बाद तो सुखिया गांव आई थी, मगर उसका कहीं पता नहीं चल सका। उसी साल सुधिया की शादी धूमधाम से कर दी गई। मगर वह चमारका लड़का कभी गांव में नहीं दीखा। सुखिया की शादी के समय भी किसी ने कोई अफवाह या बात ही नहीं फैलाई। शायद मुखिया के प्रभाव का कारण था यह। चमार का वह छोकरा डर के कारण अपना गांव ही छोड़ गया। सोचा होगा कि गांव मे जायेंगे तो लोग उसको पीटेंगे।

सखीचन्द को ऐसा लगा जैसे सबकी जड़ गरीबी ही है। गरीब होना ही शायद पाप है। गरीब पर कोई एतबार नहीं करेगा, गरीबों की बातों पर कोई ध्यान नहीं देगा। गरीब हमेशा दुबका हुआ शायद इसी कारण रहता है कि कहीं कोई खरोंच न लग जाय। वह हमेशा सजग रहने की चेष्टा करता है।

सखीचन्द उठकर खड़ा हो गया। उसने एक लम्बी सांस ली

और आप ही आप कहने लगा—"जो होगा, देखा जायगा। अब तो जो होना था, वह तो हो चुका। पीछे पैर हटाना कठिन है और आगे बढ़ने में खतरा है। दोनों ओर खाई ही खाई नजर आ रही है। तब क्यों न आगे ही बढ़ा जाय।" उसने मन ही मन ऐसा दृढ़ संकल्प किया और वहां से अपने कमरे की ओर चल दिया।

शाम को पौधों में पानी डाला। जो व्यर्थ के घास जम गये थे, उन्हें उखाड़कर फेंक दिया। आम के जो पल्लव लॉन पर गिरकर गंदगी बिखेर रहे थे उन्हें उठाकर फेंक दिया और रात को भोजन करने के बाद सो रहा।

दूसरे दिन समय पाते ही फिर लड़कियां आईं और सखीचंद के साथ छेड़खानी करने लगीं। किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन पर इस बार एक बिजली गिरी, जिससे उनका एक अंग समाप्त हो गया।

सबेरे ही रामपूजन ने श्रीमती स्वरूपादेवी से सारा हाल कह दिया था। असल में सखीचन्द से उसको ईर्ष्या हो गई थी। सबसे प्रथम तो वह काम खूब मन लगाकर करता था, जिसके कारण सरकार उस पर प्रसन्न रहते थे। धीरे-धीरे रामपूजन की ओर से सरकार (गौरी बाबू) का ध्यान हट गया था। दूसरे कि ये दोनों लड़कियां उस पर जान देती थीं। इससे सखीचन्द को हर तरह की सुविधाएं प्राप्त थीं। खाने को भी अच्छी-अच्छी चीजें मिलती थीं और कभी पैसा भी उसके हाथ लग जाता था। लड़कियों की सुघरता, सुन्दरता और जवानी देखकर उसका भी जी ललच उठा था। उसने सोचा था कि मालकिन से कहने पर अवश्य ही सखीचन्द निकाल बाहर किया जाएगा और तब उसकी चांदी ही चांदी होगी। अतः लड़कियों के सखीचन्द के पास पहुंचते ही वह मालकिन के पास गया और साथ लाकर सारा नजारा उनको दिखा दिया। स्वरूपादेवी ने अपनी आंखों से सब-कुछ देखा मगर वह शान्त थीं।

उन्होंने ऐसे मौके पर कुछ भी नहीं कहा और उलटे पांव वापस कोठी में चली गयीं।

रामपूजन मन ही मन प्रसन्न था और कह रहा था कि अब सखीचंद निकाल बाहर किया जायेगा। तब बच्चू को याद आयेगा कि यह कैसा मजा था। खूब छककर आराम किया है, इसने। अब तक मजा-ही-मजा लूटता आ रहा है और वह भी वहां से चला गया।

कुछ देर सखीचन्द के पास ठहरने के बाद लड़कियां भी चली गईं। जैसे ही सावित्री मां के कमरे में पहुंची, मां ने पूछा—"सावित्री! सखीचन्द के साथ यह कैसा नाटक खेला जा रहा है?"

"जी!" और उसने अपना सिर झुका लिया।

"तुम्हारा नाटक मैं अपनी आंखों से देख आयी हूं।" उसकी मां श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"मेरी कोख को इस तरह कलंकित न कर, वर्ना मुझे अपनी ही ममता का अपने ही हाथों गला घोंटना पड़ेगा। आज से तेरा नाटक समाप्त। तू अपना कमरा छोड़कर कहीं नहीं जायेगी। यहां तक कि सविता से भी नहीं मिल सकेगी।"

सावित्री के साथ सविता भी आई थी। सावित्री को मां ने जैसे ही सम्बोधित किया था, सविता खिड़की के पास ही खड़ी रह गयी थी और मां का कहना सब-कुछ सुन लिया था। वह डर रही थी कि मां उसको भी न मना कर दें, मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

इस तरह सावित्री पर प्रतिबन्ध लग गया। स्वरूपादेवी ने सविता से शायद इसलिए नहीं कहा कि एक तो वह उसकी लड़की नहीं थी, दूसरे कि गोरी बाबू उसको अधिक प्यार करते थे, चाहते थे। वह चाहती थी कि इस तरहे आगे चलकर सविता की बदनामी

हो जायेगी तो उसके पति को भी होश हो जायेगा और बखेड़ा भी खत्म हो जाएगा।

अगले दिन सखीचन्द के पास अकेली सविता ही पहुंच सकी। सखीचन्द को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—"सावित्री कहां है ?"

"सावित्री अब मां के घेरे में है और अब यहां कभी नहीं आ सकती।" उदास भाव से सविता बोली—"और शायद मैं भी रोक ली जाऊंगी। लेकिन यह सब माताजी को कैसे पता चला ?"

"रामपूजन भईया ने तो परसों मुझसे मना किया था कि लड़कियों को अपने पास आने मत देना।" सखीचन्द ने कहा—"शायद उन्होंने यह सब देख लिया था।"

"ओह !" सविता ने कहा—"कही यह बात पिताजी को मालूम हो गयी···"

"अब क्या होगा ?" सखीचंद ने पूछा।

सविता बोली–"तुम्हें ही कोई उपाय ढूंढ़ निकालना चाहिए।"

"कल से मैं यहां की नोकरी छोड़ देता हूं।" उसने कहा—"एक पत्थर की दुकान पर काम मिल गया है। यदि मैं यहां से नहीं हटूंगा तो परिणाम कुछ अच्छा नहीं होगा।"

"हम लोगों को भूल तो नही जाओगे ?" सविता की आंखों में आंसू के कण साफ झलक रहे थे। जीवन में प्रथम बार सविता होश होने के बाद रोई थी। वह भी एक गरीब के लिए।

"मुझे तुम लोगों को यदि भूलना ही होता तो मैं इतना सब नही करता।" सखीचन्द ने कहा—"उसी की खातिर तो मैं कल से पत्थर का काम सीखने जा रहा हूं।" और उसने सविता को प्रथम बार अपने अंक में भर लिया।

सविता भी निढाल होकर उसकी गोद में पड़ी रही। आज दोनों का मिलन जो था। ●

छः

सखीचंद गौरी बाबू के यहां से हट गया। उसे रामपूजन और मालकिन श्रीमती स्वरूपादेवी का अब तनिक भी भय न था, यहां वह खुली हवा में खूब सांस ले रहा था। लेकिन उसे लगता कि उसकी सांस फूलती जा रही है, दम घुटता जा रहा है। उसे एक अभाव-सा लगता, कुछ कमी-सी महसूस करता। यहां सविता और सावित्री न थीं, उसके पास। जब भी दोपहर होता, उसका दिल उखड़ा-उखड़ा-सा लगता।

सखीचंद को सविता और सावित्री से प्यार हो गया था। वह प्यार, जो जिन्दगी में कभी खत्म नहीं होता, वह प्रेम, जो मरने के बाद भी ताजमहल की भांति संसार में एक निशानी छोड़ जाता है और उसे पूरा विश्वास था कि सविता और सावित्री भी उतना ही प्यार करती हैं, जितना कि सखीचंद।

अन्तिम दिन सविता को जिस तरह उसने अपने आगोश में कस लिया था और जिस तरह वह भी उसकी छाती से सटकर बेसुध-सी होकर पड़ी रही, यह बतलाता था कि सविता अब बच्ची न थी। वह यौवन की देहलीज पर चढ़ चुकी थी। वह काफी पढ़-लिख गई थी। वह काफी समझदार हो गई थी। उसे पूरा होश था कि वह क्या करने जा रही है, क्या कर रही है?

बड़े लोग या उनकी संतानें गरीबों का एहसान मानें या न मानें, हमदर्दी रखें या न रखें, परन्तु सखीचंद को पूरा विश्वास था कि

सविता और सावित्री ने जिस तरह उसके साथ प्यार किया है, वह जल्द मिटने वाला नहीं है। वह स्वयं उनके साथ इस तरह प्रेम में डूब गया था कि दिन-रात उन्हीं की चिन्ता में रहता। उसका ध्यान उन्हीं की ओर लगा रहता।

उसे दोनों बहनों का उसके साथ छेड़खानी करना याद आता और याद आता कि किस तरह दोनों उसे अपना समझकर, जब भी मिलता गले लगाये रहती थीं।

मोती बाबू के यहां से हटने के बाद वह एक छोटी-सी पत्थर की दुकान पर चला गया और वहां काम करने लगा। इस समय इस शहर में वहां एक दुकान थी, जिसका साधारण कारीगर एक मात्र उस दुकान का मालिक ही था। मालिक के परिवार में केवल एक जवान उसकी बेटी कुसुमी थी, जो पन्द्रहवाँ बसन्त पार कर रही थी।

उसने मालिक की जवान बेटी कुसुमी को देखा था और शायद कुसुमी ने भी उसको देखा होगा, लेकिन कुसुमी के प्रति उसके मन में कोई भाव नहीं उठा था। उसने देखा एक औरत थी घर में। वह जवान थी, वह सुघड़ थी, वह हसीन थी, वह चंचल थी और उसकी जवानी गदराई हुई थी, उसने नहीं जाना था बल्कि इन सबकी ओर उसका ध्यान ही नहीं गया था।

सविता और सावित्री के कहने के अनुसार वह बहुत ही सुन्दर था और कोई भी लड़की उसको देखकर उसकी ओर आकर्षित हो सकती है, उसके साथ दोस्ती करने को ललच सकती है, उसके दिल में एक चाह करवट ले सकती है।

सखीचंद मन लगाकर काम करने लगा। गरीब बेचारा, गंवार देहात का, गांव से अपमानित कर भगाया गया अनाथ लड़का, भूखा-प्यासा मानव, एक असहाय अंग और प्यार करने से रोका गया

एक स्वच्छ इन्सान, इससे दिल छलनी हो गया था उसका। काम करते-करते उसे भूत और भविष्य की चिन्तायें आ घेरतीं और वह काम में जुट जाता। जब देखो—'खट्-खट्-खट् !' सवेरे देखो—'खट्-खट्-खट् !!' शाम को देखो—'खट्-खट्-खट् !!!' जैसे सिवाय खट्-खट् के उसको कोई दूसरा काम ही न हो। गर्मी हो या जाड़ा या हो बरसात, वह नित्य चार बजे सवेरे ही उठ जाता था। तत्पश्चात दुकान में झाड़ू देता और छेनी-सरिया या पत्थर या आरी लेकर अपने काम में जुट जाता था और खट्-खट् की आवाज उसकी दुकान के चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगती।

उसको इस बात का हमेशा ख्याल रहता कि यदि वह इस काम को मन लगाकर जल्दी और अच्छी तरह नहीं सीखता है तो किस तरह पढ़ी-लिखी और बड़े घरों की लड़कियों को अपने साथ रख सकेगा। उसके साथ उन अमीर और सुकुमार युवतियों की गुजर कैसे हो सकती है। वह पढ़ा-लिखा तो था नहीं, जो कहीं नौकरी करके भी कुछ उपार्जन कर सकता। अतः परिस्थिति से बाध्य होकर वह दिन-रात काम में जुटा रहता।

गाँव का गँवार, अबोध, अनाथ और बेचारा मनोहर आजकल के वातावरण से अनभिज्ञ था, जहाँ जवानी मात्र दो घंटे के लिए, प्यार का बहाना बनाकर खरीदी व बेची जाती है। स्वांग रचा जाता है प्रेम करने का, परन्तु आड़ में वासना का नंगा नाच खेला जाता है, शरीर की हविस की प्यास बुझाई जाती है। उसका हृदय साफ उससे कहता जा रहा था कि सविता और सावित्री तुम्हारी होंगी, मात्र तुम्हारी।

भविष्य में दोनों बहनें उसे मिलें या न मिलें, पर उसी आशा की ज्योति के बल पर वह जिन्दा था और काम करके कलाकार बनना चाहता था, ताकि वह भी इस पृथ्वी पर मानव की तरह

सविता और सावित्री के साथ सांस ले सके।

छः महीने बाद ही वह कुसुमी के रंग-ढंग में परिवर्तन देख रहा था और महसूस कर रहा था कि वह उसकी ओर बुरी तरह फिसलती चली आ रही है। उसका प्रत्येक कार्य उसके लिए ही हो रहा है। इधर वह सिंगार-पटार हमेशा किए रहती है। लेकिन सखीचंद ने कभी भी आंख भर उसको नहीं देखा, नजर भर उसको नहीं घूरा। उसके मन में कोई भाव नहीं जागे। वह काम सीखना चाहता था, कला हासिल करना चाहता था, कलाकार बनना चाहता था और सविता और सावित्री के साथ जिन्दा रहना चाहता था।

छः महीने का समय और बीत गया। शहर में काफी परिवर्तन हुए। कुछ पुराने मकान बेचे गये और काफी तादाद में नये मकान बने। नगरपालिका का चुनाव भी हो गया। राजनीतिक वातावरण में गड़बड़ियां पैदा होने लगीं। विद्याध्ययन में लीन छात्रों के भी उपद्रव सुनने में आने लगे। परिवर्तन की निशानी है, यह सब।

इस बीच में वह कभी-कभी सविता को देख लेता था। सविता खुद ही बाजार जाते समय इसकी दुकान से होकर गुजरती तो सविता, सखीचंद को देखती और सखीचंद, सविता को। एक ठन्डी सांस लेकर वह सरिया चलाना रोककर सविता की ओर देखने लगता। तभी आंखों में नीर भर कर, चेहरे पर उदासी लाकर सविता मौन और चुप रहने का इशारा करती और न चाहते हुए भी वहां से आगे बढ़ जाती थी।

इस तरह सविता कभी-कभी उसको दीख जाती थी। सावित्री को उसने कभी नहीं देखा था। वह जानता था कि सावित्री पर अंकुश है और सावित्री उस अंकुश से बेहोश हो गई है। शायद उस को वह कभी दिखाई न दे। यही वह सोच रहा था कि एक लड़का उसके पास आया और इशारे से अपने पास बुलाया। सखीचंद ने

काम रोक दिया और वह दुकान से नीचे उतरकर लड़के के पास आ गया।

लड़के ने उससे कहा—"जज साहब की बिटिया गांगी के पास बाग में चबूतरे पर शाम को सात बजे मिलेंगी।" और वह चला गया।

सलीचंद को लड़के का यह वाक्य रटा हुआ जान पड़ा। उसने सोचा कि यह बात सत्य हो सकती है। सविता ने इसको इतना रटाया होगा, क्योंकि पूरी बात कहना उचित नहीं था और कहने पर भी यह लड़का समझ नहीं सकता था। उसने निश्चय किया कि वह शाम को सात बजे जरूर जायेगा।

उस वक्त तक उसने कई सिन्दूरदानियाँ तैयार कर रखी थीं। वह चाहता था कि दो-चार और बना ले। मगर मिलन की आशा से इतना पुलकित हो गया था कि काम में उसका जी नहीं लग रहा था। उसने सोचा—क्यों न एक खूबसूरत सिन्दूरदानी ही ले चलूं और सविता को भेंट दूं ताकि वह प्रसन्न होने के साथ ही यह भी समझ सके कि वह एक कलाकार हो गया है। उसका ख्याल आते ही उसने एक सिन्दूरदानी उठायी और पतली-पतली कलमों से काम करने लगा। उस पर कई प्रकार के फूल और लता बनायी। एक जगह लिखा, सावित्री। ठीक उसके पीछे लिखा—सविता। और नाम के दोनों ओर आवाज फैलने का चिन्ह दिखाया। इसका आशय था कि कोई सविता, सावित्री कहकर पुकार रहा हो। खुदाई करने के बाद उसने पालिश करना आरम्भ किया और शाम को छः बजे तक उसको रगड़ता रहा। काम करते-करते वह कुछ गुनगुना भी रहा था। शायद सस्ती फिल्मी-गीत की कोई कड़ी थी। सली-चंद फिल्मी गीतों को एकदम ही नहीं जानता था, लेकिन भोंपू से रेकार्डों को सुनते-सुनते कुछ एक कड़ी जान गया था। गुनगुनाने का

तात्पर्य था कि आज वह ज्यादा खुश था।

शाम को पौने सात बजे ही वह घर से चल दिया। उसके मालिक एवं कुसुमी को एक प्रकार से अचरज हुआ। क्योंकि दो साल के बीच एक दिन भी वह अपने मन से बाजार या और कहीं भी नहीं गया था। कभी जाता भी था तो सब्जी खरीदने या किसी लुहार की दुकान पर कलमे बनवाने। मगर सखीचंद के अपने बाजार जाने में इन्होंने तिल का ताड़ नहीं बनाया। सोचा—युवक है, मन बहलाने गया होगा कहीं।

वह चबूतरे के पास जैसे ही पहुंचा, सविता उसे दिखाई दी। उसने सावित्री को भी देखना चाहा था, तभी सविता पास आकर उसकी छाती से लग गई—"सखीचंद!"

सविता की पीठ पर वह हाथ फेरता हुआ बोला—"पहले कुशल-मगल कहो, सविता!"

सविता ने सिर उठाकर सखीचंद के चेहरे की ओर देखा—सखीचंद का चेहरा पहले की भांति काफी मुस्कराया हुआ लगा उसे, सखीचंद ने देखा—सविता की आंखों मे जल के बिन्दु उभर आये हैं।

"कैसी थीं, अब तक?" तब भी सखीचंद ने पूछा।

"तुम्हारी याद लेकर जी रही थी।" सविता ने धीरे से कहा और उसकी छाती से अलग हो गई।

चारों ओर अन्धेरा हो गया था। बाग में कहीं आदमी की परछाई भी दिखाई नहीं दे रही थी। सुनसान हो गया था। दोनों उस चबूतरे पर बैठ गए। सविता का एक हाथ अपने हाथ में लेकर सखीचंद ने पूछा—"सावित्री…?"

सावित्री का नाम लेते ही सविता रो पड़ी। बोली—"उसका नाम न लो, सखीचंद। जब से माताजी ने उसको घेरे में रखा है,

तब से वह तुमसे मिलने के लिए बेचैन है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि वह एक बार तुमको देख सके। उसकी आँखें तुम्हें देखने के लिए तरस रही हैं। दिन-रात रो-रोकर उसका बुरा हाल हो गया है। उसने पढ़ना-लिखना तक छोड़ दिया है।"

"और तुम...?"

"मैं चाहकर भी उसकी तरह नहीं कर सकती।" सविता ने कहा—"मैं रोना-धोना आरम्भ कर दूं तो पिताजी को यह बात मालूम हो जायगी। इस कारण मैं नियमित पढ़ने कालिज जाती हूं ताकि किसी को आभास न हो सके। पिताजी सावित्री पर काफी नाराज हैं, अतः घर से बाहर निकलना उसके लिए कठिन हो गया है।"

"कोमल दिल को वह रोक नहीं पा रही है।" सखीचंद ने कहा—"और उसका प्यार सच्चा है। इसको कोई नहीं तोड़ सकता, खुद भगवान भी नहीं।" और वह चुप हो गया।

दोनों काफी देर तक खामोश रहे। रात्रि की नीरवता बढ़ती ही जा रही थी। सविता ने ही चुप्पी को तोड़ा—'कुछ अपनी कहो न?'

"मैं...?" सखीचंद ने एक लम्बी सांस ली और कहने लगा, "मैं अभी जिंदा रहना चाहता हूँ, भविष्य के लिए। वर्तमान की तो तनिक भी चिंता नहीं है मुझे। रह गया भूत। तो भूत की याद मात्र मेरे हृदय में शेष है। उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को भी मैं नहीं सोचता, कभी। वर्तमान में केवल दो ही संबल हैं, जिनका संबंध भविष्य से है। पहला यह कि पत्थर का कलाकार बनूं और दूसरा कि तुम लोगों की याद को दिल में संजोए रखूं, बस।"

सविता शरमा गई।

सखीचंद ने सिन्दूरदानी जेब से निकाली और सविता की ओर

बढ़ाता हुआ बोला—"इस मुलाकात में यह भेंट !"

सविता ने सिन्दूरदानी ले ली और ध्यान से देखने के बाद बोली—"इसको तुमने अपने हाथों बनाया है ?"

"हां।" सखीचंद ने एक छोटा-सा उत्तर दिया।

"काफी कारीगरी की है, तुमने ?"

"यह कुछ भी नहीं है।" सखीचंद ने कहा—"कल से मूर्तियां बनानी हैं, मुझे। जब मूर्ति बना लूंगा तब कलाकार बन सकूंगा, मैं।"

"इस पर तो नाम भी खुदे हैं ?" सविता सिन्दूरदानी को ध्यान-पूर्वक उलट-पुलटकर देख रही थी।

"हां। 'आज की मुलाकात की यह पहली भेंट है।" सखीचंद बोला।

"मुझे तुम्हारी इस भेंट को स्वीकार करना उचित नहीं।" सविता ने कहा।

'क्यों ?" आश्चर्य हुआ सखीचंद को।

"इस कारण कि मैं तो तुम्हारे तक किसी न किसी तरह आ ही गई हूं।"सविता बोली—"लेकिन सावित्री नहीं आ सकी है। यह अनोखी लेकिन सर्वस्व के समान भेंट सावित्री के लिये ही शांति-दायिनी एवं प्रेरणदायक होगी।"

सखीचंद मौन रहा।

"इस तरह कब तक चल सकेगा?" सविता ने कहा।

"अभी समय अनुकूल नहीं है।" सखीचंद बोला—"बस थोड़े ही दिनों में पूर्ण कारीगर बन जाऊँगा। बस तब तुम जैसा कहोगी वैसा ही मैं करूंगा।"

सविता ने एक लंबी सास ली और उठती हुई बोली—"अच्छा अब मैं चलूं।"

"जाओ। जाना तो है ही, लेकिन सावित्री का ध्यान रखना।"
और दोनों दो रास्ते हो लिये, जैसे दोनों की जान-पहचान न हो।

वहां से सखीचन्द घर आया और भोजन करके सो गया।

दूसरे दिन समय पर ही उठ गया और फिर वही नित्य का धंधा। छेनी, सरिया और खट्-खट् की आवाज। सारा ध्यान कारीगरी पर। मालिक हैरान था, पास-पड़ोसियों को अचम्भा हो रहा है। जो देखता कहता—आदमी है या स्वयं पत्थर। कभी आराम नहीं, कभी कोई दूसरा काम नहीं।

उस दिन उसके मालिक ने कहा—"सखीचन्द!"

"जी!" और उसने सरिया रोक लिया तथा क्षण भर के लिये अपने मालिक की ओर ताका।

"इतनी मेहनत न किया करो।" मालिक से भी नहीं रहा गया था। उसका इतना कठिन मेहनत करना अच्छा नहीं लग रहा था। उसने कहा—"कहीं तुम्हारी तन्दुरुस्ती न गिर जाय।"

"तन्दुरुस्ती गिर जाय या स्वास्थ्य ही खराब क्यों न हो जाय।" सखीचन्द ने कहा—"किन्तु मैं वही करूंगा जो मुझे करना चाहिये। मुझे कला सीखनी है। यहां तक कि मुझे एक कलाकार बनना है मालिक! कलाकार!!"

"इसमें भी कोई शक है कि तुम कलाकार नहीं बन सकते।" सखीचन्द के मालिक ने कहा—"सखीचन्द! मैं आज शाम को गाड़ी से पत्थरों के लिए राजस्थान जाऊँगा। यही कहने के लिये मैंने तुम्हें टोका था और मैं देख रहा हूँ कि जब से तुम मेरी दुकान पर आये हो कभी नहीं आराम किया है, तुमने।...घर और दुकान देखना।"

"जी, बहुत अच्छा।" सखीचन्द ने कहा—"आपने जैसा कहा है, वैसा ही होगा।"

और शाम को मालिक रेलगाड़ी से राजस्थान के लिये चला गया। अपने मालिक को पहुँचाने वह स्टेशन तक भी गया था। वहां से आने के बाद भी उसने दो घंटे काम किया और जब दुकान बंद करने का समय हो गया, तब उसने दुकान बन्द कर दी और हाथ-पांव धोने के बाद भोजन के कमरे में चला गया। मगर यह क्या ? वहां कुसुमी न थी। उसे अचरज हुआ।

सखीचंद को कुसुमी के यहां काम करते हुए ढाई-तीन साल हो गये थे, मगर ऐसा कभी नहीं हुआ था। आज यह पहली बार ऐसा हुआ है। सखीचंद एक खूबसूरत युवक तो था ही, हृष्ट-पुष्ट भी था। उसकी मांसल भुजाएं चौड़ी छाती और विशाल चेहरा भी कम आकर्षक नहीं था। रात को जब सखीचंद दुकान बढ़ाता, कुसुमी एकटक उसीको देखा करती और जब वह बाहरी दरवाजा बन्द करता था, वह अन्दर रसोई में जाकर थाल में भोजन परोस कर उसका इन्तजार करती थी। दरवाजा बन्द करने के बाद सखीचंद हाथ-पांव धोता और रसोई में जाता, जहां कुसुमी मुस्कुराकर यह कहती—"बड़ी देर की, आज।"

"आज काफी काम था।" सखीचंद कहता।

"तुम्हें रोज ही अधिक काम रहता है।" कुछ खीझ और कुछ व्यंग्य के साथ कुसुमी कहती और भोजन की थाली सखीचंद की ओर सरका देती। सखीचंद भोजन करने में जुट जाता और कुसुमी पंखा झलती रहती या एकटक उसको देखती रहती।

सखीचंद ने रसोईघर की ओर देखा, वहां कुसुमी न थी। वह उसके कमरे की ओर गया और पुकारा—"कुसुमी!"

कोई आवाज नहीं, कोई सुगबुगाहट नहीं। केवल मौनता थी, वहां।

"कुसुमी···!" इस बार जरा जोर से आवाज दी उसने।

फिर भी वातावरण निस्तब्ध, शान्त, मौन ! ! !

सखीचंद कमरे में चला गया। आज वह प्रथम बार कुसुमी के कमरे में गया था। वहां जाते ही उसने अनुभव किया कि कुसुमी चादर ओढ़ कर पलंग पर पड़ी है। क्या उसकी तबीयत एकाएक खराब हो गयी है ? अभी-अभी तो वह अच्छी तरह थी ! आवाज देने पर तो तबीयत का ढीला आदमी भी 'हूँ'-'ना' में कुछ कहता ही हूं, फिर इसने तो कुछ भी नहीं कहा था।

कुछ क्षण बाद उसने आवाज दी—"कुसुमी !"

इस बार भी उसकी सुगबुगाहट नहीं दिखाई दी। जगा हुआ आदमी नहीं जागता, सोया हुआ ही आवाज देने पर जाग उठता है। सखीचंद आगे बढ़ गया और उसको हिलाता हुआ बोला—"कुसुमी !"

अब की बार कुसुमी तुरन्त ही उठकर बैठ गयी और एक मादक अंगड़ाई लेती हुई कहने लगी—"अरे, खड़े क्यों हो, बैठ जाओ।" उसका इशारा पलंग पर ही बैठने को था।

सखीचंद खड़ा रहा। कहा—"मैं खाना खाऊंगा।"

"चलती तो हूं।"

इसके जवाब में सखीचंद वहां से खिसक गया। वह गंवार देहाती सारे मामले को भांप गया। आज कुछ परिवर्तन होगा। घर में सूनापन है, मालिक बाहर चला गया था। रात हो रही थी। अन्दर एक युवती और एक खूबसूरत युवक थे। दोनों जवानी की देहलीज पर चढ़ चुके थे। दोनों एक-दूसरे से परिचित थे।

एक नारी, एक मर्द !

नारी अंधी थी। वह पुरुष को चाहती थी। बहुत पहले से ही चाहती थी, मगर उसको आज से पहले कभी मौका ही नहीं मिल पाया था। अपने परिवार में एकमात्र पिताजी के बाहर चले जाने

के कारण, उसे मौका मिल गया था। आज वह कुछ पाना चाहती थी, कुछ हासिल करना चाहती थी। कुछ ऐसी ही चीज को हाथ लगाना चाहती थी, जिसको वह जीवनपर्यंन्त अपने पास रख सके। नारी, मर्द पर आशिक थी।

मर्द शांत था। जानता था कि इस घर में एक युवती है, अच्छी है, जवान है ! यदि उसकी ओर निगाहें की जाएँ तो प्यार मिल सकता है। लेकिन उसने ऐसा कभी नहीं किया। इस तरह के ख्याल उसके विचार में आये ही नहीं। उसका लक्ष्य ही दूसरा था। पत्थर की पूरी जानकारी हासिल करना। हालांकि उसका मालिक कोई अच्छा कारीगर नही था, बस छोटी-मोटी साधारण-सी चीजें बना लेता था, मगर सखीचंद एकलव्य की भांति बिना प्रत्यक्ष गुरु के विद्या हासिल करना चाहता था।

कुसुमी ने सोचा। उसकी नही चली तो वह भी उठकर रसोई में आयी, जहाँ पीढ़ा पर सखीचंद बैठा उसका इन्तजार कर रहा था। आते ही उसने रसोई निकाली और थाली को आगे बढ़ा दिया।

आज का भोजन भी रुचिकर था। सखीचंद ने डट कर भोजन किया और वहां से सीधे अपने कमरे में जाकर चारपाई पर पड़ा रहा। थोड़ी देर बाद वह सो गया।

कुसुमी भी वहां से अपने कमरे की ओर आ गई और पलंग पर लेटी। उसे नींद नही आ रही थी। मन में तरह-तरह के ख्याल आ रहे थे। कुछ अच्छे थे तो कुछ बुरे। कुछ मानवीयता के लक्षण थे तो कुछ अमानवीयता के ! वह सोचती-जब पुरुष ही आगे कदम बढ़ाता नही है, तब नारी ही अपना आत्म-समर्पण क्यों करे ? नारी इतनी देय तो नहीं ?···फिर सोचती—नारी समर्पण तो नहीं करेगी मगर नारी को ही तो कुछ पाना है, अतः वह तपस्या

तो करेगी ही ! नारी सुख मिलेगा, जीवन मिलेगा, और एक अच्छा मन चाहा, सुन्दर जीवन-साथी भी !

इसी समर्पण और असमर्पण के प्रतिद्वन्द्व में वह एक-डेढ़ घंटे फंसी रही। अंत में वह उठकर सखीचंद के कमरे की ओर चल पड़ी। उसके पैर कांप रहे थे, मगर दिल शांत था। हृदय के किसी कोने में हलचल-सी मच रही थी, लेकिन मन प्रसन्न था ! कभी उसको अनुभव होता—जो होने जा रहा है, वह उचित नहीं। एक कुमारी युवती के लिए तो और उचित नहीं। तभी हृदय का एक कोना कहता—एक-न-एक दिन तो किसी के साथ होना ही है, यह सब, फिर सकपकाहट क्यों ? नारी को समर्पण करना ही है। मर्द के समक्ष झुकना ही है, फिर···

कुसुमी सखीचंद के कमरे में चली गयी। कमरे में एक छोटा-सा बल्ब चमक रहा था। हल्की रोशनी चारों ओर फैली हुई थी। सखीचंद नींद में सो रहा था। सारा बदन चादर से ढका था, लेकिन अकेला चेहरा बाहर झांक रहा था, आंखें बन्द किए हुए। वह और पास चली गयी और बगल में चारपाई पर धीरे से बैठ गयी और उसके खुले चेहरे को ध्यान से देखने लगी।

कुसुमी ने काफी नजदीक से यहां तक कि एकदम पास से सखीचंद को देखना चाहा था, मगर अब तक चाहकर भी नहीं देख सकी थी। आज वह उसको देखना चाहती थी। वाह ! कितना खूबसूरत और सुघड़ जवान है—मन में वह सोचती हुई वह उसके चेहरे की ओर झुकी। ऐसा गठीला मर्द शायद ही किसी को मिले और उसके होंठ···

"कौन ?" सखीचंद ने अपनी आंखें खोल दीं।

कुसुमी ने अपना चेहरा पीछे हटा लिया। उसने कुछ कहा नहीं।

"कुसुमी तुम ?"

"हाँ !" उसने जवाब दिया।

कुसुमी का इस तरह रात को अपने कमरे में आना, सखीचंद को अच्छा नहीं लगा। तभी दिमाग में एक झटका लगा—आज मालिक भी तो नहीं हैं। ऐसा ख्याल आते ही वह सारा मामला समझ गया, बोला—"तुम यहाँ क्यों आई हो ?"

मौन, शान्त थी कुसुमी !

"अपने कमरे में जाकर सो रहो।"

"......." कुसुमी ने इस बार भी कुछ नहीं कहा।

कुसुमी को इस तरह मौन व्रत धारण करते देख, सखीचंद ने सोचा—यह इस समय अपने होश में नहीं है। चाह और वासना ने इसको बुरी तरह ग्रस लिया है। इसको इतना भी होश नहीं है कि कुमारी होकर भी इस रास्ते पर चलने को आतुर है। परिणाम की भयंकरता का इसको तनिक भी अनुभव नहीं है, शायद। नहीं तो यह प्यार की सीढ़ी पर चढ़ती, वासना की नहीं। एकाएक रात को यहाँ आना, वासना की निशानी थी। वह बोला—"कुसुमी ! तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है। तुम कमरे में जाकर सो रहो।"

"जी नहीं चाहता।" कुसुमी ने लज्जावश इतना धीरे से कहा।

"यह सेज फूलों का नहीं, कांटों की है, कुसुमी !" सखीचंद ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया और प्यार से बोला—"इस रास्ते पर चल सकना तुम्हारे लिए अशुभकर होगा।"

"मैं देख रही हूँ, तुम मानव के रूप में मर्द नहीं हो।" कुसुमी ने शायद सखीचंद की बात न सुनी हो। वह शहर की थी। सखीचंद को एक गंवार और निपट बुद्धू ही समझती थी। उसने कहा—"नहीं तो तुम इस तरह कभी शांत नहीं रह सकते थे।"

सखीचंद ने उसके कंधे पर से अपना हाथ हटा लिया और सिर झुकाकर बोला—"परिस्थिति सब-कुछ करा देती है, कुसुमी।" शहरी युवती की छाती तन गई और गवार मर्द को झुक जाना पड़ा। बेशर्म, आधुनिक और फैशन में डूबी शहरी तितली उड़-उड़ कर माली के पास जाती, मगर माली उसकी ओर देखता भी नहीं था। उसके सतरंगी पंखों ने अपनी ओर आकर्षित नहीं किया।

"अब तुम परिस्थिति के गुलाम नहीं हो।" कुसुमी ने कहा—"बाबूजी कह रहे थे कि अब तुम एक अच्छे कलाकार हो।" और वह सखीचंद के पास सरक गयी।

"कुसुमी! यह रास्ता गलत है।"

"तुम्हारी सुन्दरता और जवानी, मुझे इस रास्ते पर ढकेल रही है, सखीचंद!" उस वक्त वह पूर्ण आवेश में थी। उसने सखीचंद का हाथ पकड़ लिया और कहने लगी—"इतने दिन हो गए। मैं अपने को रोकती आ रही हूं। मैंने सोचा था—पहले-पहल तुम्हें देखकर कुछ इशारा करोगे या पहला कदम तुम्हारा ही उठेगा, किन्तु अब तक के अनुभवों के आधार पर मुझे ज्ञान हुआ कि पत्थर का काम करते-करते, तुम भी पत्थर हो गये हो। जैसे कोई बेजान मूर्ति हो।"

"भोग को मैं जीवन का अंग नहीं मानता।" सखीचंद ने कहा।

"फिर भी भोग के बिना जीवन अपूर्ण है।" कुसुमी बोली।

"भोग से शरीर की जिस्मी भूख मिटती है, मन की नहीं।" सखीचंद ने कहा—"भोग तो प्रत्येक जीव के जीवन से सम्बन्ध रखता है, जैसा कि आदमी से। मगर तब हमारे और अन्य जीव-जन्तुओं में क्या अन्तर रह जायगा? अतः प्यार का स्थान मनुष्य के जीवन में सर्वोपरि है, बनिस्बत भोग के।"

"यह सर्वथा सत्य नहीं।" कुसुमी ने कहा—"अन्य जीव-जन्तु भी तो अपने समान पशुओं के साथ प्यार करते हैं।"

"वे केवल सन्तान के साथ ही प्यार का सलूक करते हैं। वह भी कब, जब उनका बच्चा छोटा होता है।" सखीचंद ने कहा—"अंत में यही देखा गया है कि बेटा ही मां के साथ, भाई ही बहनों के साथ और बाप ही बेटी के साथ भोग करने लगता है और यह सब जानवरों में ही होता है।"

"फिर भी भोग के बगैर प्यार अधूरा रह जाता है।"

"यदि सत्य प्रेम में भोग आ भी जाय तो भोग का स्थान क्षणिक ही रहता है।" सखीचंद ने कहा—"भोग के बाद प्यार आ जाता है और एक दूसरे के प्रति आकर्षण बना रहता है और दोनों की जिन्दगी की गाड़ी सरकती जाती है।"

"मैं तो भोग से ही प्यार की उत्पत्ति मानती हूं।" कुसुमी ने कहा।

"तुम एकदम गलत रास्ते पर हो कुसुमी!" सखीचंद शहर में रहने के कारण काफी चालाक हो गया था। कहने लगा—"क्या वेश्याओं से भी कोई प्यार करता है?"

"क्यों नहीं?" कुसुमी ने कहा—"यदि लोग उनसे प्यार नहीं करते तो उनके पास जाते ही क्यों! भौंरों की भांति मंडराते क्यों?"

"केवल जिस्मी भूख मिटाने के लिए ही लोग वेश्याओं के पास जाते हैं।" सखीचंद ने कहा—"उन्हें कोई प्यार नहीं करता और न वेश्यायें ही किसी से प्यार करती हैं। पुरुषों का ध्येय रहता है कि कम से कम पैसों में अधिक से अधिक वासना खरीदें ताकि आंखों को और इन्द्रियों को तृप्ति मिले और वेश्यायें चाहती हैं कि कम से कम भोग में अधिक से अधिक पैसा वसूलें। असल में दोनों

एक दूसरे को वेवकूफ वनाने की होड़ में रहते हैं। कभी बाजी पुरुष के हाथ आती है तो कभी वेश्या के। ऐसी जगहों पर प्यार का नामो निशान भी नहीं होता।"

"देखो, सखीचंद ! मैं शहरी वातावरण में पली हूँ।" कुसुमी ने कहा—"यहाँ के वातावरण में भोग का ही स्थान प्रथम है। यदि किसी स्त्री का चेहरा किसी पुरुष की आंखों में गड़ गया तो वह स्त्री पर डोरा डालना आरंभ कर देगा और यही स्त्री भी है। अतः यदि भोग होता रहे तो स्वतः ही प्यार होने करती लगेगा।"

"नहीं।" सखीचंद ने कहा—"जब तक वासना की तृप्ति नहीं हो जाती, एक दूसरे के प्रति उनका खिचाव बढ़ता जाता है, मगर भोग के पश्चात् मन में एक घृणा का बीज अंकुर जाता है। वहां प्यार नहीं होता। भोग की मंजिल में केवल क्षणिक आकर्षण होता है।"

"फिर भी···" और वह सखीचंद से लिपट ग ी।

'कुसुमी···!" सखीचंद ने जोर से कहा और एक चांटा उसके गाल पर जड़ दिया।

क्षण भर के लिए कुसुमी ठण्डी पड़ गयी। उसका जोश मर गया। वह पूरे होश में थी, मगर उसका दृढ़ निश्चय नहीं टला था। सौभाग्य से तो आज साढे तीन-चार साल बाद ऐसा सुनहरा मौका मिला था। जब से उसने सखीचन्द को देखा था, वह उसकी ओर आकर्षित होती गयी थी। उसने कहा—"इस चांटे से मेरा निश्चय नहीं बदल सकता। मैं तुम्हारे इस झांसे में नहीं आ सकती यदि तुम मुझे जान से भी मार डालोगे तो मैं यहां से टल नहीं सकती।"

सखीचन्द को ऐसा ज्ञात हुआ कि उसका संकल्प दृढ़ है, अतः

कृत्रिम प्यार से ही इससे पिंड छुड़ाया जा सकता है। ऐसा विचार आते ही उसने कुसुमी का कोमल हाथ पकड़ लिया और धीरे से पूछा—"जिस रास्ते पर तुम चलना चाह रही हो उस रास्ते के बारे में कभी सोचा है?"

"सोचना क्या है, मुझे?" कुसुमी पढ़ी-लिखी भी थी, कहने लगी—"मैं जवान हूँ, सुन्दर हूँ, मस्त हूँ!!! शादी होने की उम्र है, मेरी! आखिर विवाह का क्या अर्थ होता है?"

"तब तो तुम एक होशियार युवती हो।" और उसकी चोटियों के रिबनों में खेलता हुआ सखीचन्द कहने लगा—"तब पिताजी से कहकर क्यों नहीं अपनी शादी करवा लेती?...यह सब बखेड़ा ही नहीं रहेगा।"

"शादी की बात मैं कैसे पिताजी से कह सकती हूँ?" कुसुमी बोली—"उन्हें तो कुछ होश ही नहीं है, तब मैं भला क्या कहूँ?"

"तब तक धीरज रखो।" सखीचन्द ने कहा—"जब तक तुम्हारी शादी नहीं हो जाती।"

"मैंने तो कसम खा ली है कि शादी की बात पिताजी से नहीं कहूँगी।" कुसुमी ने कहा—"तुम अपनी शादी क्यों नहीं कर लेते?"

"हम गरीब से शादी का भार नहीं चल सकेगा।"

"मुझसे शादी करोगे?" कुसुमी कहने लगी—"पिताजी राजी हो जायेंगे। साथ ही सारी सम्पत्ति के मालिक हम होंगे। दोनों की जिन्दगी आराम से कट जाएगी।"

"यह विचार तारीफ के काबिल है।" और बात रखने के लिए सखीचन्द ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसके हाथ की चूड़ियों को गोलाई में घुमाता हुआ वह बोला—"कुसुमी! यह चूड़ियाँ किसने बनाई है?"

कुसुमी ने उत्तर दिया—"पिताजी ने।"

"कल से मैं भी चार-आठ चूड़ियां बनाऊँगा।" और वह चूड़ियों की कारीगरी को ध्यान से देखने लगा। इस अवसर से कुसुमी ने लाभ उठाया और वह सखीचन्द की गोद में बैठने का साहस कर सकी। बात टालने के ख्याल से वह बोला—"कुसुमी! इधर आओ।" और गोद से हटा कर अपनी जांघ पर उसका सिर रखकर लिटा दिया। बोला—"पिताजी से कहो, हमारी शादी जहां तक हो सके जल्दी ही कर दें।"

कुसुमी गद्गद हो गई। उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

"ओह! चार बज गये।" एकाएक ध्यान आते ही सखीचन्द ने उसका सिर हटा दिया और दुकान की ओर जाता हुआ बोला—

"मुझे आज से ही चूड़ियां बनानी है।"

कुसुमी प्यासी नज़रों से सखीचन्द को देखती हुई वहां से चली गयी।

सात

जिस रात को कुसुमी के साथ सखीचन्द का पाला पड़ा था, उसके बाद की रात को भी कुछ ऐसा ही होता, लेकिन कमरे में जाते ही सखीचन्द अन्दर से कुंडी बन्द कर देता था। दूसरे दिन रात को कुसुमी उनके पास गयी थी, मगर अन्दर से दरवाजा बन्द देख वापस लौट आयी थी। इसका अनुभव सखीचन्द को भी हो गया था। वह यह भी समझ गया था कि उसकी चाल को कुसुमी पहचान गयी है और वह शहरी वातावरण में पली सयानी युवती कुसुमी अच्छी तरह समझ गयी थी कि सखीचन्द ने कृत्रिम प्यार का ढोंग रचकर उसको धोखा दिया है, उसके साथ छलावा हुआ है। नारी के आत्मसमर्पण करने पर पुरुष का प्यार, यहां तक कि मात्र भोग न पा सकी, कुसुमी।

कुसुमी का ख्याल था कि यदि एक बार भोग के लिए किसी पुरुष को उत्साहित किया जाय तो नित्यप्रति भोग की इच्छा पुरुष के मन में जगेगी और वह स्वतः ही नारी के पास दौड़ता दिखाई देगा, क्योंकि जिस्मी भूख मिटती नहीं है। जितना ही उसकी ओर बढ़ा जाय, उसकी भूख बढ़ती ही जाती है। लेकिन एक गंवार युवक से शहरी नारी इस माने में हार मान गयी।

और तीन-चार रातों के बाद तो सखीचन्द का मालिक भी

आ गया था। उसे अब डर नहीं था।

उस दिन कुसुमी के हाथों में चूड़ियाँ देखकर उसने चूड़ियाँ बनाई थीं। अब तो वह कई एक मूर्तियां भी बना चुका था। उसे डर लगता था ज़रा-सा सरिया का चोट इधर-उधर पड़ा कि मूर्ति बेकार गयी, लेकिन ऐसा सोचना उसकी शंका मात्र ही निकली। उसकी मूर्ति अच्छी बनी थी और तुरन्त बिक भी गयी थी।

सखीचन्द लगन एवं मिहनत करने के कारण पांच ही साल में एक कलाकार हो गया।

एक दिन उसको खबर मिली कि गांगी के उस पर दाहिनी ओर बगीचे में सविता उसको शाम को बुला रही है। ऐसा समाचार उसको सवेरे ही मिला था। उस दिन वह चूड़ियां बना रहा था। छः चूड़ियां तो वह पूर्णतया तैयार कर चुका था, शेष दो अधूरी थीं। उसने इनको भी तैयार किया और शाम होते-होते उन पर पालिश भी कर चुका था।

चूड़ियों के पेट में उसने कलाकार का नाम महीन अक्षरों में सखीचन्द लिख दिया था, जो ध्यान से देखने पर ही ज्ञात होता था।

शाम को वह घर से चल पड़ा। आज यह दूसरा दिन था, जब वह बिना मालिक से कहे बाजार की ओर गया था। मालिक से उसने इतना ही कहा था कि वह दो घण्टे में लौट कर आएगा, किंतु सच्चाई को छिपा गया था वह।

निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते ही उसने देखा कि सविता अकेली उसका इन्तजार कर रही है। वह मुस्कुराया और तभी सविता झपटती हुई आकर उसकी छाती से लग गयी। दोनों अपनी सारी कठिनाइयों को कुछ देर के लिये भूल गये और एक दूसरे को आलिंगनपाश में बांधे यों ही खड़े रहे।

कुछ देर बाद दोनों एक सुरक्षित स्थान पर बैठ गये। बैठते ही सखीचन्द ने पूछा—"सावित्री कैसी है, अब ?"

"लगता है, तुम्हारे प्यार में रोते-रोते वह पागल हो जायेगी।" सविता ने कहा।

"ओह ! मासूम हृदय पर कितना आघात किया जा रहा है।" और सखीचन्द ने एक लम्बी सांस ली, मानो वह भी प्यार में तड़प रहा हो।

सविता ने महसूस किया कि सावित्री के बगैर सखीचन्द भी नहीं रह सकता। यह जानकर उसको खुशी हुई कि सखीचन्द का प्यार निर्मल, गंगा की धारा की तरह है, जो किसी को धोखा नहीं दे सकता, क्योंकि आज वह बहुत-कुछ निश्चय कर यहां आई थी। उसने कहा—"मेरे पास आते ही वह मुझसे लिपट जाती है और रो-रो कर कहती है कि दीदी, एक बार मुझे मिला दे सखीचंद से। बस, एक ही बार। मैं केवल एक बार उसको नजर भर देख लेना चाहती हूं। मगर माताजी इतनी कठोर हो गयी हैं कि उसकी-हमारी हर चाल को शक की निगाहों से देखती हैं और विफल कर देती हैं। आज सिनेमा जाने का हमने बहाना किया था परन्तु उन्हें जब पता चला कि हम दोनों बहनें साथ जा रही हैं तो उन्होंने कहा कि मैं भी साथ चलूंगी। बस, बेचारी न आ सकी, यहां।"

सखीचन्द थोड़ी देर मौन रहा। तत्पश्चात कहने लगा—"इससे तो उसका प्यार कम नहीं हो सकता। जितना ही वे रास्ते में बाधक होंगी, उतना ही उसका प्यार दृढ़ होता जायेगा। अन्त में पराकाष्ठा पर पहुँच जायगा, तो ये बंधन भी टूट जायेंगे, ये बाधायें भी हट जायेंगी, ये रोक-टोक भी समाप्त हो जायेंगे !!!"

"उसको विश्वास हो गया कि तुम उसे नहीं मिल सकते।"

सविता ने कहा—"बस, वह जान छोड़ बैठी है।"

"क्या मालिक बाबू को भी मालूम हो गया है, यह सब ?" सखीचन्द ने पूछा और सविता की ओर देखने लगा। आज उसका चेहरा कुछ अस्त-व्यस्त-सा लगा उसे। दो-चार बालों की पतली लटें सामने आकर हवा के सम्पर्क से झूल रही थीं। आँखें कुछ भीगी-भीगी-सी लग रही थीं और चेहरा तो उदास था ही।

"पिताजी को सारा वृत्तान्त मालूम है या नहीं, मैं पूरे विश्वास के साथ नहीं कह सकती।" सविता ने कहा—"लेकिन उनके एक-आध कामों से मैंने अनुमान किया है कि उन्हें मालूम हो चुका है, क्योंकि एक दिन माविर्त्री ही कह रही थी कि पिताजी समझा रहे थे।"

"समझाते समय क्या-क्या कह रहे थे वे ?" सखीचन्द की जिज्ञासा बढ़ी यह जानने की कि कहीं उसका नाम तो गोरी बाबू ने नहीं लिया था, जिससे वह अन्दाज लगा सके कि पूरी गाथा उन्हें ज्ञात है या नहीं।

"समझाते समय वे इधर-उधर की ही बातों का उदाहरण दे रहे थे। उन्होंने कभी खुलकर मेरा या तुम्हारा नाम नहीं लिया।" सविता बोली—"वह समझा रहे थे कि मनुष्य को कठिनाइयों से घबराना नहीं चाहिए। विपत्ति एक परीक्षा है और परीक्षा में संयम, धैर्य एवं हिम्मत से काम लेना चाहिए। यह रास्ता इस समय (जवानी) का एक हिंडोला होता है जिसकी रस्सी यदि कमजोर हुई तो टूटने पर वह गिर सकती है, जिससे उसका कोई अंग-भंग हो सकता है। अतः हिंडोला पर चढ़ने से प्रथम ही उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। रोना-धोना या भोजन छोड़ने से कुछ सार्थक नहीं होता। जीवन की गाड़ी को घसीटते हुए ही कठिनाइयों पर विजय पाने की इच्छा रखनी चाहिए।"

था और न सविता से मिलने के लिए ही मना किया था । किसी ने जान से मारने की भी धमकी नहीं दी थी। उसका दिमाग शून्य-सा हो गया और माथा पकड़ कर सिर झुका लिया।

सविता जानती थी कि सगाई की बात सुनते ही सखीचंद अपने होश में नहीं रहेगा, मगर बिना कहे, समस्या का निदान भी नहीं हो सकता था।...थोड़ी देर तक वह भी मन मार कर बैठी रही। फिर बोली—"अब क्या होगा ?"

"यही तो सोचना है !" और उसने सविता का चेहरा दोनों हाथों से पकड़ लिया और ध्यान से देखने लगा।

सविता ने अपनी आंखें बंद कर ली, क्योंकि उसने देखा था कि सखीचंद की आंखों में जल भर गया था। वह बोली—"और इसी जून में शादी भी होगी।"

अपने हाथों को हटाता हुआ वह पूछ बैठा—"क्या तुम शादी करने को राजी हो ?"

"नहीं।" सविता ने जवाब दिया—"यदि सगाई के समय ही विरोध करती तो एक नया बखेड़ा उत्पन्न हो जाता और हम नहीं मिल सकते थे। तब मैंने सोचा कि तुमसे मिलकर ही राय करूंगी। शादी के पहले तक कुछ-न-कुछ करना ही होगा।"

"क्या किया जायगा, तब ?"

"मेरी तो राय है कि हम लोग कहीं दूर भाग चलें।" सविता ने कहा—"वरना यहां रहकर जून की शादी को हम दोनों में से शायद कोई भी नहीं रोक सकेगा। पिताजी के आगे किसी की नहीं चल सकेगी।"

"ऐसा करना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।" सखीचंद ने कहा—"यह एक पुरानी बात हो गयी है कि नायक और नायिका कहीं भाग गये। नायक ने नायिका को धोखा दे दिया और नायिका

कुछ दिनों बाद घर लौट आयी। और बाद में प्यार का मखौल बनाया जाता है, खिल्ली उड़ाई जाती है, उसकी। यह सब ···।"

"मुझे विश्वास है, तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते।" सविता ने कहा—'सिवाय भाग चलने के और कोई हमारे सामने रास्ता ही नही है। मैं हर रास्ता ढूंढ़ चुकी हूं और परिणाम की जानकारी भी कर चुकी हूँ। मैं भागने से बेहतर जहर खाकर मर जाना श्रेयस्कर समझती हूँ, मगर अभी मैं मरना नही चाहती।"

"इसके सिवा और कोई भी रास्ता नहीं है ?"

"नहीं।" सविता ने कहा।

"किन्तु मेरे पास पैसे नहीं हैं।" सखीचंद भी भागने पर राजी हो गया था।

"इससे क्या हुआ ?" सविता बोली—"मेरे पास काफी हैं। फिर मैं सावित्री को सब-कुछ समझा जाऊँगी।"

"परसों हम दोनों दस बजे रात को तूफान एक्सप्रेस से चलेंगे।" और उसने सविता को आलिंगन-पाश में कस लिया।

सविता ने कुछ कहा नहीं, केवल उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

दोनों शांत थे, जैसे निर्जीव हों।

आठ

रविवार का दिन था, आज। सर्वत्र छुट्टी ही छुट्टी थी। सभी कार्यालय एवं उद्योग-धन्धे बंद थे। केवल पशु-पक्षी और मनुष्य के पेट का धन्धा चालू थे। पेट-पूजा की कभी छुट्टी नहीं। सवेरा होते ही नाश्ता और भोजन की चिन्ता और शाम होते ही खाने की फिक्र। यह क्रम जारी रहता है। मनुष्य चाह कर भी इससे छुटकारा नहीं पाता। कुछ ऐसी कृत्रिम वस्तुओं का आविष्कार हुआ है, जो कुछ घन्टों तक भूख को मार डालती हैं, मगर निरंतर ऐसा करते रहने से भूख तो नहीं लग सकती, लेकिन शरीर दुबला-पतला हो जायेगा।

गौरी बाबू आज तड़के ही उठे थे । नित्य-क्रिया से निपटने के बाद उन्होंने दातुन भी किया और एक कुर्सी पर बैठकर कुछ विचार करने लगे। सविता का आज दो दिनों से कुछ पता नहीं चल सका। वह कहां जा सकती है ! किसी रिश्तेदार के यहां जाना तो संभव ही नहीं था। एक तो गौरी बाबू के कोई भी नजदीकी रिश्तेदार नहीं था, और कुछ जो दूर के थे, उनसे आना-जाना कम रहता था। यदि कहीं जाना ही था तो कम-से-कम कहकर तो जाना चाहिए था। इस तरह आज मैं चिन्तित तो नहीं रहता। उन्होंने सोचा सविता ने उचित किया है या अनुचित, इस पर विवाद नहीं। ऐसा

करके उसने मुझको कष्ट दिया है, चिंता से ग्रस्त किया है, जिसको उचित नहीं कहा जा सकता।

चाय का समय हो गया था और उसी का गौरी बाबू इन्तजार कर रहे थे। उसी समय उनकी पत्नी श्रीमती स्वरू[illegible] कमरे में आयी और एक कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—"कुछ प[illegible] चला ?"

जवाब में न्यायाधीश महाशय का सिर झुक गया।

"ऐसा करने से पहले सविता ने तनिक भी नहीं स[illegible] कि एक नीच कर्म करके वह हम लोगों को कितना लज्जित कर [illegible]हा है!" गौरी बाबू की पत्नी ने कहा—"असल में उसने वही [illegible] जो एक जवान लड़की अपनी जवानी में करती है। लेकिन त[illegible]जुब है कि मंगनी होने के समय उसने कुछ भी संकेत नहीं किय[illegible] उसका लक्ष्य इसके विपरीत हो सकता है।"

"यदि उस समय तनिक भी भनक मिल जाती, [illegible]े, तो मैं मंगनी स्थगित करवा देता।" गौरी बाबू ने कहा [illegible] और पूरी तरह छानबीन करने के बाद ही अगला कदम उठा[illegible]। समझ की बात है कि वह अकेली जा भी कहां सकती है। मे[illegible] समझ में नहीं आता।"

तब तक नौकर ट्रे में चाय का सामान लेकर आ[illegible] और मेज पर रखने के बाद दो कदम पीछे हट कर खड़ा रहा [illegible]न सोचा शायद और कुछ मांगा जाय।

तभी श्रीमती स्वरूपादेवी ने नौकर की ओर दे[illegible] कहा—"अब तुम जा सकते हो।"

और वह नौकर बाहर चला गया।

नौकर के बाहर जाने के बाद श्रीमती स्वरूपा देवी ने ही कहा—"वह अकेली तो गई नहीं है!"

"अकेली नहीं गई है ?" गौरी बाबू ने कहा—"तुम्हारे कहने

का क्या मतलब है ?"

"मतलब साफ है जी !" पति से वह बोली—"मैं उसकी हर एक चाल को अच्छी तरह परखती थी और उसके चले जाने के बाद से पता भी लगाया है। सविता सखीचंद के साथ ही भागी है।"

'सखीचंद ?' अचरज से उन्होंने पूछा—"कौन सखीचंद ?"

"वही जी !" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"जिस एक गंवार लड़के को माली के साथ आज से दो-ढाई साल पहले रखा था...।"

"वह तो निपट गंवार था।"

"प्यार गंवार और कुरूप नहीं देखता।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहा—"उन दोनों की साठ-गांठ पहले से ही थी।"

'पहले से था ?'

"हां ! चाय का प्याला गौरी बाबू की ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—'जब वह रखा गया था, तभी से सविता उसकी ओर आकर्षित होती गई थी। दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे थे और आपस में घुल-मिलकर बातें करते थे।'

गौरी बाबू ने चाय का प्याला उठा लिया और एक चुस्की लेते हुए कहने लगे—'तुमको कैसे पता चला यह सब ?"

"मुझको सब-कुछ पता चल गया था।" यहां पर श्रीमती स्वरूपादेवी ने सावित्री की बात जान-बूझकर छिपाई ताकि सविता, गौरी बाबू की निगाहों में हमेशा के लिये गिर जाय। इस कारण कि न्यायाधीश महोदय सविता को ही अधिक मानते थे, चाहते थे। सावित्री को भी मानते थे, लेकिन सविता के बनिस्बत कम। किसी बात की तकरार में जब सविता और सवित्री में वाद-विवाद होता तो गौरी बाबु का फैसला सविता के पक्ष की ओर होता, चाहे वह गलत ही क्यों न होता। इसी कारण श्रीमती

स्वरूपादेवी ने सविता की ही बात छेड़ी—"उन दोनों की यह चाल रामपूजन माली ने एक दिन अपनी आंखों से देख ली थी और उसने मुझसे कह दिया था। और एक दिन जब सविता और सखीचंद पास-पास बैठे बाग में बातें कर रहे थे तो रामपूजन मेरे पास आया और सारा वृत्तान्त कहकर वहाँ चलने को कहा। पहले तो मैंने सोचा कि ऐसे समय में घटना-स्थल पर जाना उचित नहीं। न जाने वह किस दशा में होंगे। फिर यह सोच कर कि सच्चाई का वास्तविक पता लग सकेगा, मैं चली गई और अपनी आंखों से बातें करते देखा और सुना।"

"तुमने अपनी आंखों से देखा था?" गौरी बाबू को शायद विश्वास नहीं हो रहा था। क्योंकि वह जानते थे कि दोनों बहनें हमेशा एक साथ ही रहती थीं, साथ खाती थीं, साथ पीती थीं और साथ ही सोती भी थीं। जब देखो दोनों एक साथ। फिर सविता का अकेली सखीचंद से बातें करना कुछ जंचता नहीं था। उनका हृदय गवाही दे रहा था कि उनकी पत्नी श्रीमती स्वरूपा-देवी उनसे कुछ छिपा रही हैं।

"जी हां!" स्वरूपा देवी ने कहा।

"क्या वहां सखीचंद के साथ अकेली सविता ही थी?" गौरी बाबू ने पूछा।

गौरी बाबू के इस प्रश्न से श्रीमती स्वरूपा देवी चौंकीं और मन ही मन कहने लगीं—क्या इनको मेरी बातों पर यकीन नहीं हुआ? क्या इनको पता चल गया है कि वहां सखीचंद के पास सावित्री भी जाती थी? क्या इस तरह का उल्टा-पुल्टा प्रश्न कर सच्चाई जानने की चेष्टा में तो नहीं हैं? कहीं रामपूजन ने तो सारी गाथा नहीं कह दी है? तब भी उन्होंने हिम्मत बांध कर सीधा-सा जवाब दिया—"जी हां! सखीचंद के पास अकेली

सविता को ही मैंने देखा था।"

"कितनी बार ?"

"अनेकों बार मैंने उन्हें एक-साथ देखा था।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहा और चाय का प्याला उठाकर चाय पीने लगीं। ऐसा देख गौरी बाबू ने भी चाय पीनी आरंभ कर दी।

खाली कप और प्याली को मेज पर रखकर वह सोचने लगे—गरम चाय के प्यालों को धुएं की भांति एकाएक क्यों गायब हो गयी, सविता ? उन्हें पूर्ण पता था कि सखीचंद के साथ ही वह गयी है। सखीचंद युवक था। गंवार तो था, मगर वह सुन्दर था। उसका बदन सुघड़ था, तन्दुरुस्त था। वह खूबसूरत भी तो था। एक जवान पुरुष के साथ एक जवान नारी का भागना, क्या अर्थ रखता है, गौरी बाबू अच्छी तरह जानते थे। सविता चालाक थी, पढ़ी-लिखी थी और उसे यह भी तो पता नहीं था कि वह हमारी जन्मी नहीं थी, फिर हमारा भी तो ख्याल रहा होगा, उसे। एक गंवार के साथ भागना उसने कैसे स्वीकार किया ? जिसके साथ उसकी मंगनी हुई थी, वह एक बैरिस्टर था, पैतृक सम्पत्ति थी, उसके पास। सुन्दर जवान था। एक योग्य पति के सभी लक्षण उसमें मौजूद थे। और सविता ने स्वयं अपने होने वाले पति को देखा भी था, मगर मंगनी होने के बाद उसने ऐसा क्यों किया ? शहरी, शिक्षित और बड़े घरों की युवतियां तो शादी के मामले में खुलकर अपने माता और पिता के सामने आती हैं। वह शरमाती नहीं, क्योंकि यह सम्बन्ध जीवन भर का सम्बन्ध होता है, क्षणिक नहीं। अतः सविता को किसी-न-किसी प्रकार कुछ कहना ही चाहिए था। यदि उसकी इच्छा जानने के बाद भी उसके साथ ज्यादती की जाती तो वह ऐसा पग उठा सकती थी। गौरी बाबू को कभी किसी प्रकार का मलाल न होता।...क्या बात थी जो

आधुनिक धनी और शिक्षित युवक को छोड़कर वह एक गांव के गंवार और मूर्ख छोकरे के साथ चली गई ?…किन्तु इसका जवाब उनके हृदय ने नहीं दिया। इतना सोचने के बाद भी उनका हृदय शांत नहीं हुआ, अतः उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा—"तुम बता सकती हो कि एक शिक्षित और धनी युवक को त्यागकर एक गंवार को सविता ने क्यों अपनाया ?"

श्रीमती स्वरूपा देवी ने नौकर को बुलाकर सारा सामान अन्दर भिजवा दिया और अपने पति की बेचैनी को अनुभव कर कहने लगी—"इसका असली जवाब मेरे पास नहीं है। एक शिक्षित और धनी युवक को उसने क्यों नहीं अपनाया, इसका असली कारण तो सविता ही बता सकती है या उसका हृदय। परन्तु अपने अनुभवों और जो कुछ भी जानती हूं, उसके आधार पर मैं इतना ही कह सकती हूं कि उस गंवार युवक की बेहद सुन्दरता ने ही सविता को मोह लिया था।"

गौरी बाबू ने अपना सिर झुका लिया। उनके हृदय से यह आवाज उठी—सुन्दरता ने किसी युवती का हृदय मोह लिया है तो क्षणिक लिप्सा के लिए ही तो। और क्षणिक आवेश से जीवन का सम्बन्ध नहीं हो सकता। सिनेमाघर में परदों पर चल रहे दृश्यों को देखते ही कभी उमंग, कभी खुशी और कभी रोना आ जाता है, मगर सिनेमा घर के बाहर आते ही वह परदे का दृश्य कल्पना मात्र होता है। वैसे ही यदि भोग के लिए किसी गंवार और खूबसूरत पुरुष पर आसक्त हो जाया जाय तो आवेश कुछ ही दिनों में शांत हो जाना चाहिए। मगर यहां तो सविता ने उसको जीवन-साथी बनाया। उसने ऐसा तो नहीं सोचा होगा कि कुछ दिन साथ रहने के बाद वह घर लौट आयेगी। इतनी हिम्मत नहीं कर सकती वह। मेरी इज्जत का उसे पूर्णतया ध्यान होगा। भले ही

वह चली गयी है तो एक तरह से ठीक ही किया।

श्रीमती स्वरूपा देवी ने अपना कहना जारी रखा—"आप तो घर की ओर से हमेशा से ही बेफिक्र रहे। सविता के साथ साठ-गांठ बढ़ाने के बाद, लखीचन्द ने सावित्री को भी अपने जाल में फंसाना चाहा था। परन्तु रामपूजन ने मुझे प्रथम ही सचेत कर दिया था, अतः मैं हमेशा सशंकित रहती थी। मैंने खुद ही सुना था—एक दिन सविता न जाने क्या-क्या सावित्री से कह रही थी, जिसका आशय कुछ अच्छा नहीं था। लेकिन मैंने सावित्री पर बंधन लगा दिया और उसकी आजादी छिन गयी। यदि सावित्री भी आज सविता की तरह आजाद होती तो यह भी हाथ न आती।"

"जब तुमने अपनी आंखों से देखा था..." गौरी बाबू ने कहा, "तब मुझसे तुमको कह देना चाहिये था और साफ-साफ कह देना चाहिये था। किन्तु न जाने क्यों तुमने मुझसे भी नहीं कहा। आज हमारी कितनी जगह हंसाई हो रही है? यदि सामने पा जाऊं तो दोनों को गोलियों से उड़ा दूं।" उनका चेहरा तमतमा गया था। श्रीमती स्वरूपा देवी ने देखा आज न्यायाधीश महाशय काफी नाराज हैं। आज से पहले उन्होंने कभी इस तरह अपने पति को गुस्सा होते नहीं देखा था। आंखों की पुतलियां लाल हो गयीं थीं, चेहरा भयंकर लग रहा था।

"अब गुस्सा करने से क्या लाभ?" श्रीमती स्वरूपा देवी ने नम्र वाणी में कहा—"जो होना था, वह हो ही गया। अब तो यह सोचना है कि क्या किया जाय। क्या चुप बैठा रहना अच्छा होगा?...या खुद खोज-खबर ली जायगी।"

गौरी बाबू ने कुछ नहीं कहा।

"जीवन में आज की तरह हम लोगों को कभी अपमानित नहीं

होना पड़ा था।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने ही पुनः कहा—"अपनी ही सन्तान से मात होना पड़ता है। सविता ने बहुत बड़ी गलती की है। यदि वह जहर खाकर मर जाती तो हमारे लिये अच्छा होता। बुढ़ापे में ऐसा दिन भी देखना हमारे नसीब में बदा था।"

अब भी गौरी बाबू ने कुछ नहीं कहा। लगता था—वह कुछ सोचने में व्यस्त थे। शायद श्रीमती स्वरूपा देवी की बात भी नहीं सुन रहे थे। बस विचारों से घिरे दीख रहे थे, वे।

"सचमुच में सब-कुछ जानते हुए भी मैंने आपसे सविता का हाल कहना उचित नहीं समझा।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहा—"इस बात के लिये आप भले ही मुझसे नाराज हों, लेकिन मेरे लिये अच्छा है। यदि सविता की बात उठाती तो आप मुझ पर ही नाराज होते और यही सोचते कि सविता को गैर समझ कर हमने ऐसा लांछन लगाया है ताकि सविता बदनाम हो जाय। इसलिये कि सावित्री मेरे उदर से जन्मी थी और ऐसे मौके पर होना ही यही है। किसी के दोषों को उसके सामने खोलकर रखा जाय ताकि वह अपना दोष छोड़ दे तो वह बहुत ज्यादा क्रोधित हो जाता है और अपने को बचाने के लिये कहने वाले को दोष दिया जाता है। यदि शराबी को शराबी कहा जाय तो वह गुस्से से पागल हो जाता है। यदि वेश्या को रण्डी कहा जाय, तो वह नाराज हो जायगी। यही समझने के बाद मैंने आपसे कहना उचित नहीं समझा। सोचा-समय आने पर स्वतः ही सब-कुछ आप को ज्ञात हो जायगा। उस वक्त अविश्वास का नाम भी नहीं रहेगा।" और वह चुप होकर अपने पति की ओर देखने लगी।

गौरी बाबू ने मन ही मन सोचा कि श्रीमती स्वरूपा देवी ने अपने उदर से जन्मी सावित्री को बंधन में बांधकर एकदम बदनामी से बचा लिया और सविता को बहती गंगा में डुबकी लगाने

के लिये छोड़ दिया। वह पुरुष होकर क्या दिन-रात घर की लड़कियों के पीछे पड़े रहते! घर की ओर देखना नारी का काम है। पुरुष बाहर का राजा है और औरत घर की रानी, मर्द का वास्ता केवल धन कमाने और बाहरी वातावरण से सभी को सुरक्षित रखना है और औरत का काम है, प्रत्येक परिवार को देखना तथा समय पर भोजन का प्रबन्ध करना। सावित्री के जन्म लेने के बाद ही गौरी बाबू को श्रीमती स्वरूपा देवी की चाल पर शक होने लगा था कि उसका मन सविता की ओर नहीं जा रहा है। लेकिन गौरी बाबू से उसने कभी खोल कर यह बात नहीं कही। या यों कहिये कि श्रीमती स्वरूपा देवी को कहने का साहस ही नहीं हुआ। संतान के अभाव में जब यह परिवार एकदम निराश हो गया था, तब सविता को अस्पताल से उठाकर श्रद्धा और प्रेम से घर लाया था ताकि सूने परिवार में एक बहार आये। गौरी बाबू यह अच्छी तरह जानते थे कि श्रीमती स्वरूपा देवी का सारा प्यार सावित्री को मिल रहा है, इसी कारण उनका सविता पर अधिक स्नेह रहता था। कचहरी से आते ही सविता को पुकारते और जब तक वह उनके सामने न आ जाती, वे चैन नहीं लेते थे। उन्हें पूर्णतया विश्वास हो गया कि सविता के प्रति श्रीमती स्वरूपा देवी ने अन्याय किया है और आज जो कुछ देखना पड़ा है उसकी जड़ में स्वरूपा देवी का विचार है। अंत में उन्होंने कहा—"अपनी आंखों से देखने के बाद तो तुमको, दोनों को जान से मार डालना चाहिये था।"

"ऐसा करना मुझे जंचा नहीं था।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहना आरम्भ किया—"आप पुरुष हैं और आप इस समय क्रोध के अधीन बोल रहे हैं, मगर औरतों में इतनी हिम्मत या धैर्य कहां, जो ऐसे मौके पर सन्तुलन से काम ले सकें।"

"जब सावित्री भी सविता के साथ थी, तब तुमने सावित्री पर

रोक क्यों नहीं लगाई ?"

श्रीमती स्वरूपा देवी अपने पति गौरी बाबू के प्रश्न से एकदम तिलमिला गयीं। उनको कुछ क्रोध भी हुआ और कुछ अचरज भी। वह जान गई कि उनके पति सब-कुछ खुलवाना चाहते हैं, जिसे स्वयं श्रीमती स्वरूपा देवी खोलना नहीं चाहती थी। वह चुप रह गयी। उनकी समझ में नहीं आया कि वह क्या जवाब दें।

"सावित्री पर रोक लगाकर तुमने अच्छा नहीं किया।" गौरी बाबू ने पुनः वही प्रश्न दुहराया। उन्होंने समझा श्रीमती स्वरूपा-देवी सब-कुछ समझ गयी हैं।

"सब-कुछ देखकर भी यदि सावित्री को न रोकती तो क्या करती।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहा—"सविता चाहती थी कि सावित्री भी उसका अनुसरण करे, मगर मैं यह सब पसन्द नहीं कर सकी।"

"सविता को ही तुमने क्यों आजाद छोड़ दिया ?" गौरी बाबू कहने लगे—"इस कारण न, कि वह गलत रास्ते पर जाय और उसके साथ-साथ हमारी भी बदनामी हो। सविता को आजादी देकर तुमने यह साफ-साफ कह दिया कि सविता को तुमने अपना नहीं, गैर समझा था। और आज हम उसी का परिणाम भुगत रहे हैं।"

"ओह !" श्रीमती स्वरूपादेवी ने अपना माथा पकड़ लिया। शायद उसकी चोरी पकड़ ली गई थी। जिस बात को वह आज तक खोलना नहीं चाहती थी, वह खुलकर ही रही। उसको भय भी हुआ कि आज वह गौरी बाबू की नजरों में गिर गयी, जबकि वे श्रीमती स्वरूपा देवी को बहुत अधिक प्यार करते थे।

"अफसोस करने से क्या फायदा, जब सब-कुछ सामने ही है।" गौरी बाबु ने कहा—"इधर सावित्री की तबीयत खराब रहती है।"

श्रीमती स्वरूपा देवी एकदम कांप गयीं। उन्होंने सोचा—अब तो लगता है, सारा चिट्ठा ही खुलकर रहेगा। अपने पति की जानकारी पर उसको अचम्भा भी हुआ। इन्हें यह सब कैसे मालूम हो गया?

"तबियत तो कोई खराबी नहीं है, उसकी।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहा—"हां, मन ही है···!"

"मुझे पता है, वह भी···।" और गौरी बाबू चुप रह गए। उन्होंने जान-बूझकर इस वाक्य को पूरा नहीं किया। सोचा, इससे पत्नी के मन का भाव ही ज्ञात हो जाय या, कुछ आवेश में आकर उगल ही दे।

श्रीमती स्वरूपा देवी ने इस बार कुछ नहीं कहा। केवल सिर झुका लिया उसने।

"तुमसे एक गलती हो गयी है।"

श्रीमती स्वरूपा देवी ने कुछ भी बोलना उचित नहीं समझा।

गौरी बाबू ने मेज पर रखी घन्टी बजायी—"टन······! टन···!! टन···!!!"

दो मिनट बाद ही नौकर आया और हाथ जोड़कर बोला—"जी सरकार!"

"चक्रवर्ती बाबू को बुला लाओ?"

"बहुत अच्छा हुजूर···।" और नौकर वहां से चला गया।

"अब चक्रवर्ती बाबू से क्या कहियेगा? नौकर के चले जाने के बाद श्रीमती स्वरूपादेवी ने अपने पति से पूछा। उससे अब रहा नहीं गया था। वह नहीं चाहती थी कि इस बात का सब जगह ढिंढोरा पीटा जाय और लोग उसकी खिल्ली उड़ाएं।

किन्तु गौरी बाबू ने कोई जवाब नहीं दिया। वे सिर झुकाकर मौन बैठे रहे।

"आपके दुलार ने उसको बिगाड़कर मिट्टी बना दिया था।" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा।

इस बार भी गौरी बाबू ने कुछ नहीं कहा।

"मैं पहले ही कहती थी कि आप सविता पर कड़ी नजर रखें, उसको इतना न चढ़ाइये।" गौरी बाबू की मौनता ने श्रीमती स्वरूपा देवी को बोलने का साहस भर दिया। वह कहने लगी— "लड़की जात को अधिक चढ़ाना परिवार के लिए हितकर नहीं होता। मगर आपको तो लड़की सचरित्र और आदर्श दीख रही थी आपकी सेवा करने के रूप में वह बिस्तरा क्या लगा दिया करती थी, आपकी निगाहों में चरित्रवान और निष्ठावान बन गयी थी। शंका के कारण कई बार मैंने टोका भी था कि यह लड़की न जाने किस जाति की है, कैसे खानदान की है, मगर आपने कतई ध्यान नहीं दिया था। उसकी माँ थोड़ी पढ़ी-लिखी थी, तो इससे क्या? क्या कोई प्रमाण है कि उसकी माँ उच्च कुल की नारी थी?"

गौरी बाबू ने इस बार भी कुछ नहीं कहा, चुपचाप बैठे रहे। उनका ध्यान श्रीमती स्वरूपा देवी की बातों पर नहीं था। वे सोच रहे थे कि चक्रवर्ती बाबू से बात किस तरह कही जायगी। आज तक जितने भी केस थे, सभी का फैसला उन्होंने चक्रवर्ती बाबू की गुप्त रिपोर्ट पर ही किया था। और कभी ऐसा नहीं हुआ था कि निरपराध को सजा मिली हो चक्रवर्ती बाबू पर उनको पूरा विश्वास था। अतः पारिवारिक कठिनाइयों को भी उनसे कहकर पता लगवाने में कोई दिक्कत नहीं जान पड़ी, उन्हें। यही कारण था कि श्रीमती स्वरूपा देवी कहती जा रही थी और गौरी बाबू सुनते जा रहे थे।

श्रीमती स्वरूपा देवी कहती जा रही थी—"अब मुझे पूर्णतया ख्याल आ रहा है कि सविता के विरुद्ध में जो भी शिकायत आपसे

करती थी, आप उस पर कतई नहीं सोचते थे। शायद उस वक्त आप यही सोचकर चुप रह जाते होंगे कि मैं सविता की मां नहीं हूं या सविता ने मेरे गर्भ से जन्म नहीं लिया है, इसलिए मैं उसकी शिकायत कर रही हूं। और उसी का यह कुफल आज हम लोगों को भुगतना पड़ रहा है। हमारी नाक ही कट गई, आज।"······

गौरी बाबू ने सिर उठाकर बाहर दरवाजे की ओर देखा और तब एक लम्बी सांस लेकर रह गए।

"आपकी तबीयत ठीक नहीं लगती है।" और श्रीमती स्वरूपा देवी ने अपने हाथ से उनका बदन स्पर्श किया। बोली—"काफी चिन्ताग्रस्त हैं आप। बुढ़ापे में ऐसी चोट बर्दास्त नहीं की जाती, आप अन्दर चलकर आराम करें।" और उसने अपने पति की ओर देखा।

गौरी बाबू हिले-डुले नहीं। और न ही उन्होंने मुंह से कुछ कहा ही।

श्रीमती स्वरूपा देवी कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गयी और गौरी बाबू के नजदीक जाकर बोली—"आप अन्दर जाकर आराम करें न!"

इतने पर भी गौरी बाबू ने कुछ नहीं कहा। वे कुर्सी छोड़कर उठे और बाहर बरामदे में आकर टहलने लगे।

उनकी इस बेचैनी को श्रीमती स्वरूपा देवी ने महसूस किया, उसके हृदय मे विश्वास हो गया कि इस वक्त उसके पति होश में नहीं हैं। अपने आपे में नहीं हैं। सविता का उनके साथ ऐसा विश्वासघात करना, उनकी ममता का गला घोंटना या सविता का उनकी आंखों से ओझल हो जाना ही शायद उनकी चुप्पी, मौनता या जड़ का कारण हो। जब आत्मीय स्वजनों का एकाएक पला-

यन हो जाता है तो हृदय को एक जबर्दस्त धक्का लगता है, शरीर में सुरसुरी समा जाती है और कण्ठ से कुछ आवाज नहीं निकलती। ठीक यही हालत गोरी बाबू की थी।

श्रीमती स्वरूपा देवी भी बरामदे में ही एक ओर खड़ी हो गयी।

कुछ देर बाद नौकर आया और कहा—"चक्रवर्ती बाबू अभी आ ही रहे हैं।" और वह भी बाहर खड़ा हो गया।

श्रीमती स्वरूपा देवी ने उसको चले जाने का इशारा किया और वह वहां से चला गया।

गोरी बाबू बेचैनी और बेसब्री से बरामदे में टहलते रहे और चक्रवर्ती बाबू के आने का इन्तजार करते रहे।

श्रीमती स्वरूपा देवी भी इस बात का इन्तजार कर रही थी कि उसके पति चक्रवर्ती बाबू से किस तरह का कदम उठाने को कहते हैं, जिसका परिणाम क्या हो सकता है।

दस-पन्द्रह मिनट बाद चक्रवर्ती बाबू आये और हाथ जोड़कर दोनों पति-पत्नी को बारी-बारी से प्रणाम किया। चक्रवर्ती बाबू की उम्र साठ के लगभग थी। मगर खाने का आराम एवं चिन्ता नहीं होने के कारण इस वक्त भी वे काफी तन्दुरुस्त दिखायी दे रहे थे। चक्रवर्ती बाबू सरकारी नौकर थे और गोरी बाबू उनको जो भी कहते, वही काम वह करते थे। गोरी बाबू के साथ रहते उनको बीस वर्ष हो गये थे। न्यायाधीश महाशय को वे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

चक्रवर्ती बाबू को आया देख गोरी बाबू अन्दर कमरे में चले गए और एक कुर्सी में धस गये। उन्होंने चक्रवर्ती बाबू की ओर देखकर कहा—"आप बैठ जायं।"

चक्रवर्ती बाबू ने श्रीमती स्वरूपा देवी को देखा। तब तक

श्रीमती स्वरूपा देवी भी एक कुर्सी पर बैठ गयी थी, अतः ये भी एक कुर्सी पर बैठ गये और गौरी बाबू की ओर देखने लगे।

गौरी बाबू ने एक बार अपनी पत्नी की ओर देखा और फिर चक्रवर्ती बाबू की ओर देखकर कहा—"सविता को तो आप जानते ही थे।"

"जी।"

"वह कहीं चली गई है।" गौरी बाबू बोले।

"जी?" चक्रवर्ती बाबू को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा—यदि चली गई है कहीं सविता, तो घबड़ाने की क्या बात है! मगर गौरी बाबू की बातों से साफ पता चला कि वह बिना कहे-सुने ही कहीं चली गई है।

"परसों रात से ही वह गायब है। अभी तक तो उसका कुछ भी पता नहीं चल सका है। उसके बिस्तरे पर कोई पत्र वगैरह भी नहीं मिला।" गौरी बाबू ने कहा।

"ताज्जुब है, सर!"

"हां, अचरज की बात ही है।" गौरी बाबू ने कहना जारी रखा—"आपको याद होगा, आज से ढाई-तीन वर्ष पहले मैंने राम-पूजन के साथ एक गंवार लड़के को रख लिया था...!"

"जी!" चक्रवर्ती बाबू ने कहा—'शायद उसका नाम सखी-चंद था।"

"सखीचन्द ही उसका नाम था। हमारे यहां से हटने के बाद वह बाजार में एक पत्थर की दुकान पर काम करता था। अनुमान किया जा रहा है कि सविता उसके साथ ही गई है।"

"सर! मुझे तो विश्वास नहीं होता।" चक्रवर्ती बाबू ने डरते-डरते ही कहा—"कहां सविता रानी और कहां वह गंवार सखीचन्द! मुझे तो कुछ और ही बात लगती है।"

"बात क्या है, किसी को पता नहीं।" गौरी बाबू ने कहा—"आप पूरी तरह उसकी दुकान पर जाकर पता लगाइये कि वह मालिक से क्या कहकर गया है। कब गया है। इसी से भले ही कुछ पता चल सके, वर्ना क्या पता मेरी सविता, इस समय कहाँ, किस दशा में होगी।" और उन्होंने अपने माथे पर एक हाथ रख दिया।

चक्रवर्ती बाबू ने भी गौरी बाबू की बेचैनी को महसूस किया और काफी दुखी हुए।

काफी देर बाद जब कोई कुछ न बोला तो चक्रवती बाबू ने ही मौनता भंग की—"सर ! मैं जा रहा हूँ।"

"जाइए !" गौरी बाबू ने कहा और चुप हो गए।

और चक्रवर्ती बाबू वहाँ से चले गए।

चक्रवर्ती बाबू के चले जाने के बाद श्रीमती स्वरूपा देवी ने अपने पति की ओर देखा और तब कहने लगी—"सविता का पता लगाने में समय लगेगा...।"

"हूँ...।"

"उस बैरिस्टर युवक से क्या कहा जायगा ?"

गौरी बाबू ने अपनी पत्नी की ओर देखा।

"अब तो वह सविता से शादी कर नहीं सकता।"

"हूँ...!"

"मेरी सलाह मानिए तो उसी युवक से सावित्री की शादी कर दीजिए !"

श्रीमती स्वरूपा के इतना कहते ही गौरी बाबू ने लाल-लाल अपनी आंखों से पत्नी को देखा और अचम्भे से पूछा—"क्या कहा, तुमने ?...उसी युवक से सावित्री की शादी ?"

"जी, हाँ !" धीमे स्वर में वह बोली।

"मुझे कोई एतराज नहीं हो सकता !" गौरी बाबू ने न जाने एकाएक ऐसा जवाब क्यों दिया। शायद कुछ सोच-विचार कर ही ऐसा कहा होगा।

श्रीमती स्वरूपा देवी को साहस हुआ। वह बोली—"तब उस लड़के को बुलाकर मैं कुछ बातें कर लूं···।"

बीच से बात काटकर गौरी बाबू ने कहा—"नहीं।"

स्वरूपा देवी असमंजस में पड़ी। कभी हां, कभी ना, यह उसकी समझ में नहीं आया। पति की ओर देखकर पूछ बैठी—"मेरी समझ में नहीं आया कि आप क्या चाहते हैं।"

"शायद सावित्री की तबीयत ठीक नहीं है।" गौरी बाबू ने कहा—"उसको समझा-बुझाकर राजी कर लो तो मुझे कोई आपत्ति न होगी। सविता गई तो गई अब मैं सावित्री को भी हाथ से जाने नहीं देना चाहता।"

"वह कब इन्कार कर सकती है !"

"किसी अनुमान के पीछे मैं दौड नहीं सकता।" गौरी बाबू ने एक लम्बी सांस लेकर कहा—"सावित्री से बातें कर लो। समझाओ। तबीयत ठीक हो जाने के बाद वह राजी हो जाय तो सब ठीक ही है।"

श्रीमती स्वरूपा देवी ने उठते हुए कहा—"मैं उसे राजी कर लूंगी।"

"राजी तो कर लोगी उसे। लेकिन देखना कहीं तुमसे दूसरी गलती न हो जाय।" और वह बाग की ओर चले गए।

●

नौ

सखीचंद और सविता, सविता और सखीचंद, दोनों तूफान एक्सप्रेस में बैठे चले जा रहे थे, सुदूर, जहां अपना कोई न था। न कोई जाना-पहचाना ही था, न हितू-रिश्तेदार ही। जहां के लोग दोनों को देखकर समझ सकते हैं कि दोनों पति-पत्नी हो सकते हैं। हालांकि सविता का ध्यान सूनी मांग की ओर एकदम ही नहीं गया था। उसकी मांग सूनी थी जो कुमारी या विधवा की निशानी है। मांग में लाल सिंदूर न था, जो धवा और विवाहिता के लक्षण हैं। उसे इस बात का तनिक भी ध्यान न था कि उसकी मांग को देखकर पति-पत्नी होने में कोई शक कर सकेगा।

तूफान एक्सप्रेस दोनों को अपने उदर में छिपाये, बिना मंजिल के, भागी जा रही थी। उसे किसी के दुःख और सुख की चिंता न थी। मिलन और बिछुड़न का गम न था। किसी-किसी जगह हांपती हुई कुछ देर रुकती और पानी लेकर धुआं छोड़ती आगे बढ़ जाती। हजारों लोग सिर छिपाकर बैठे थे। कोई नौकरी पर जा रहा था तो कोई घर। कोई देश रक्षा-हित सीमा पर जा रहा था तो कोई भ्रमण करने ही। इसमें जाति-पांति का भेद न था। हिन्दू-मुसलिम का हिसाब न था। गाड़ी सभी की है। सभी गाड़ी के हैं।

दोनों में अभी तक यह तय नहीं हो पाया था कि दोनों कहाँ जायेंगे तथा आगे किस तरह का कार्य कर जीवन-यापन करेंगे। बस वे तो शाहाबाद की मिट्टी से दूर, बहुत दूर चले जाना चाहते थे ताकि उनके प्यार के बीच दीवार न हो। श्रीमती स्वरूपा देवी के विचार बाधक न हो सकें। माली रामपूजन जैसा व्यक्ति प्रेम का उपदेश देने वाला न हो और न्यायाधीश महोदय जैसा बुजुर्ग कानून का भय न दिखा सके। जहां दोनों का प्रेम हो, अखंड प्रेम। सविता हो और सखीचंद। एक जवान स्त्री हो और दूसरा जवान मर्द और साथ में दोनों का एक-दूसरे के प्रति अटूट प्यार हो। जहाँ खुली धरती हो और खुला आकाश। जहां अनगिनत तटों के मध्य एक चन्द्रमा अटखेलियां खेल रहा हो। बस!

मुगलसराय पार करने के बाद सविता ने पूछा—"कहाँ चला जाएगा?"

"जहां तुम उचित समझो।"

"फिर भी कुछ तो कहना चाहिये।" सविता ने कहा।

"मेरे लिए सभी जगह एक-सी है।" सखीचंद ने कहा—"मैं नहीं जानता कि कौन शहर कैसा है तथा वहां किस तरह के उद्योग धन्धे होते हैं।"

"दिल्ली कैसा रहेगा?"

"वहां क्या है?" सखीचन्द ने पूछा।

"भारत की राजधानी। विदेशों के अनेकों राजदूत। सारे देश के संसद-सदस्य, जो कानून बनाते हैं।" सविता ने कहा।

"कानून बनाने वाले संसद-सदस्य?" सखीचन्द ने कहा—"जिनके चलते आज देश की हालत इतनी पतली हो गई है कि भोजन के लिए विदेशों से अनाज मंगवाना पड़ रहा है। जिस देश के निवासी एकदम कंगाल हो गये हैं। एक तरह से भारत भिखमंगा

बन गया है। नहीं, वह शहर जाली-फरेबों का है। अमीरों का है। वहां हम लोगों का गुजर न होगा। कोई ऐसी जगह का नाम बताओ जहां हमारे लिए रोजी-रोटी का प्रबन्ध हो सके।"

"तुम ही बताओ।" सविता ने कहा।

"मेरे ख्याल से जोधपुर चला जाय, जहां पत्थरों का काम होता है।" सखीचंद ने कहा—"वहां पहुंचते ही मुझे कहीं-न-कहीं काम मिल ही जाएगा।"

"तो जोधपुर ही चलने का विचार है ?"

"हां।" और सखीचन्द मौन रह गया।

सवेरा हुआ। चिड़ियों का चहचहाना आरम्भ हो गया। दिन निकला। दोपहर हुआ और शाम होते-होते दोनों जोधपुर शहर में पहुंच गए। स्टेशन से निकलकर दोनों मुसाफिरखाने में आये और सामान रखकर बैठ गए। दोनों उस जगह के लिए अनजान थे। यह बात किसी चालाक व्यक्ति से नहीं छिप सकती है। एक आदमी दोनों को देखते ही भांप गया कि दोनों परदेशी हैं। पास जाकर उसने पूछा—"आप लोग कहां जायेंगे ?"

सविता ने सखीचन्द की ओर देखा और सखीचन्द ने सविता की ओर। जैसे दोनों एक-दूसरे से पूछ रहे हों कि क्या जवाब दिया जाय। अन्त में सविता ने ही उससे कहा—"हम यहीं जायेंगे।"

"कोई ठौर-ठिकाना तो होगा ही ?"

"जी नहीं।" सविता ने कहा—"हम लोग पहले-पहल यहां आये हैं। आज से पहले कभी नहीं आये थे यहां।"

"घूम-फिर कर चले जाइयेगा आप लोग। या यहीं ठहरियेगा ?"

"अभी तो कुछ दिन ठहरने का ही विचार है।" सविता बोली, "साल-दो-साल बाद देखा जायेगा।"

"आप लोग किस देश से आए हैं?"

उस अनजान व्यक्ति के इतना पूछने पर इस बार सविता को कुछ शंका हुई। वह आश्चर्य से सखीचन्द की ओर देखने लगी। वह उचित जवाब भी नहीं देना चाहती थी और इन्कार भी नहीं करना चाहती थी।

इसी असमंजस में थी कि उस व्यक्ति ने कहा—"बेटी, आप कोई दूसरा न समझें। मैं यहीं का निवासी हूं, मेरा यहां पर अपना मकान है। मैंने आपकी कठिनाई देखकर ही पूछा था।"

"हम लोग शाहाबाद प्रान्त बिहार से आ रहे हैं।"

"यदि आपको इस शहर में रहना है तो आप लोग मेरे साथ मेरे घर चलें।" उस व्यक्ति ने कहा। वह प्रौढ़ावस्था का था। वेष-भूषा से शरीफ ज्ञात होता था—"वहां रहने के लिए कोठरी का प्रबन्ध हो जाएगा। और इच्छा न हो तो आप लोग न जायें।"

"तो चलिए, हम लोग भी साथ ही चलेंगे।" सविता ने कहा तो सखीचन्द को भी साहस हुआ और सारा सामान बटोरकर वे लोग उस अनजान और अपरिचित व्यक्ति के साथ हो लिए।

रिक्शा पर आधा घन्टा सफर करने के पश्चात् वे एक मकान के पास उतर गये। उस अधेड़ व्यक्ति ने आगे बढ़कर ताला खोला और अन्दर प्रवेश करता हुआ बोला—"आइये आप लोग भी। भाग्य ने मुझे अकेले ही रहने को बाध्य किया है। इसी [illegible] में अधिकतर तीर्थयात्रा पर ही रहता हूं। बहुत मुश्किल [illegible] चार दिन इस मकान में रह लेता हूं।" अन्दर जाकर उसने [illegible] ओर का दरवाजा खोल दिया।

पूरब की ओर, मकान के आगे सड़क पड़ती थी। आगे दुकान थी। एक छोटा-सा आंगन। आंगन के तीन ओर बरामदा और दो ओर बड़े-बड़े कमरे। अधेड़ व्यक्ति ने ही पुनः कहा—"आंगन

का एक कमरा आप लोग मेरे लिए छोड़ दें, बाकी एक कमरा, तीनों ओर का बरामदा, दुकान और आने-जाने का रास्ता आप लोगों के जिम्मे रहा। रही किराए की बात, तो आप जो भी उचित समझियेगा, महीने में दे दीजियेगा। क्योंकि परदेशी जानकर मैंने आपको रखा है। किराये पर देकर रुपया कमाना मेरा ध्येय नहीं।" और अपना कमरा खोलने के बाद उसने कुछ सामान इकट्ठा किया और आंगन में आकर कहने लगा—"बिटिया, मैं बैजनाथधाम, आरा की आभरन देवी और पटना की पटनदेवी के दर्शनार्थ जा रहा हूं। आप लोग आराम से इस घर को अपना घर समझ कर रहें।"

जब तक वह यह सब कहता और करता रहा, सविता और सखीचन्द आश्चर्य से उसकी ओर देखते रहे। उनका सामान आंगन के बरामदे में ही रखा हुआ था। उस व्यक्ति के चले जाने के बाद सखीचन्द ने कहा—"अजीब व्यक्ति है यह।"

"यह दुनिया है।" सविता ने कहा—"यहां हर तरह के लोग रहते हैं तथा भला-बुरा हर तरह की वारदातें होती रहती हैं।"

अन्दर का कमरा खाली था। दोनों ने अपना सामान लगाया और एक साथ ही बैठ गए।

सविता ने ही मौनता भंग की—"बाजार से कुछ आवश्यक सामान तो लाना होगा न?"

"हां।" सखीचन्द ने कहा—"रोटी पकाने के लिए तवा, चौकी और बेलना, तरकारी पकाने के लिए कड़ाही, छलनी और करछुल, भात के लिए एक छोटी पतीली और दाल के लिए भी। साथ ही एक गिलास, दो कटोरे तथा एक छोटी-सी चम्मच जरूर चाहिए।"

"और राशन नहीं?"

"राशन नहीं आवेगा तो पकेगा क्या ?" बक्सा खोलकर रुपए देती हुई सविता ने कहा—"बाजार से जल्दी आना। तब तक मैं चूल्हे का इन्तजाम करती हूं।"

सखीचन्द सामान लेने बाजार की तरफ चला गया।

सविता ने आंगन, तीनों बरामदे, कमरा और बाहर की दुकान को अच्छी तरह बुहार दिया। आज वह ज्यादा प्रसन्न थी। उसके ऊपर किसी प्रकार का बन्धन न था। बेसहारा होने पर भी वह इस तरह की आजादी से खुश थी।

एक घन्टा बाद सखीचंद सारा सामान लेकर लौट आया।

उस दिन दोनों ने मिल-जुलकर भोजन तैयार किया और खा-पीकर अलग-अलग बिस्तरे पर सो रहे। सोते समय दोनों मौन थे, परन्तु दोनों को नींद नहीं आ रही थी। आपस में एक-दूसरे के प्रति कुछ सोचते-सोचते दोनों सो गए, क्योंकि गाड़ी के सफर से थके थे।

सवेरा हुआ। दोपहर बीता और शाम हो चली। इसी तरह दो दिन बीत गए। दोनों की राय से एक पंडितजी बुलवाये गए और ब्याह की तैयारी हो गई। पंडितजी के कहे अनुसार शादी का सारा सामान सखीचन्द बाजार से ले आया और उसी रात दोनों का विवाह हो गया। दोनों ने एक-दूसरे को जीवन-पर्यन्त अपनाने तथा खुश रखने के लिए क़समें खाईं, वायदे किये। पंडितजी ने कुछ उपदेश दिये और आज से दोनों दो होते हुए भी एक हो गये। पति और पत्नी। पति-पत्नी। दो शरीर लेकिन आत्मा एक ही!

पंडितजी ने अपनी दान-दक्षिणा बटोरी और भोजन करने के पश्चात चले गए। आंगन में बहुत-सा सामान बिखरा पड़ा था। दोनों ने मिलकर साफ किया। इसी में दोपहर बीत गई। भोजन

पकाना था नहीं। बाकी भोजन दोनों से खाया नहीं गया। कुछ गरीबों को दे दिया।

आज की रात उसकी सुहागरात थी, पहली रात !

वैसे तो दोनों जाने-पहचाने थे। दोनों एक-दूसरे को प्यार भी करते थे, लेकिन ऐसा अवसर अभी तक नहीं आया था। सच्चे प्रेमी की तरह दोनों एक-दूसरे से अपना दुखड़ा रोते और याद लिए हुए लौट जाते थे। सविता भी नहीं जानती थी कि पहली रात में क्या होता है और सखीचंद चूंकि गांव का गंवार और अनपढ़ युवक था, नहीं जानता था कि सुहागरात को इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है।

परन्तु शिक्षा के आधार पर सविता पहली रात का महत्त्व अनुभव कर रही थी और उम्र के आधार पर सखीचंद भी कुछ-कुछ जानने की योग्यता रखता था।

सविता लाज छिपाने के लिए पहले ही कमरे में चली गयी थी। उसे डर था कि यदि सखीचंद ने उसका हाथ पकड़ लिया तो वह शरम से मर जायेगी।

रात हो चली थी। सखीचंद ने आवाज दी—"सविता !"

उसकी आवाज चारों ओर गूंजकर रह गई।

"सविता···!" उसने पुनः आवाज दी।

सखीचंद को इसका भी कोई जवाब दिया।

"सविता···!" चिल्लाता हुआ सखीचंद कमरे में गया और देखा कि सविता सिकुड़-सिमटकर गठरी-सी बनी बैठी है। नज-दीक पहुंचकर उसने कहा—"सविता !"

सविता ने सिर उठाकर सखीचंद की ओर देखा और पुनः उसने अपना सिर झुका लिया।

"तुम यहां चुपचाप दुबककर बैठी हो और चिल्लाते-चिल्लाते

मेरा गला फटा जा रहा है।" उसके पास बैठता हुआ सखीचंद बोला—"क्या बात है ?"

इस बार भी सविता ने उसकी बात का कुछ भी जवाब नहीं दिया।

"लगता है मेरे साथ यहां आने का तुमको अफसोस है···।" सविता की मौनता ने सखीचंद के मन में यह बात पैदा कर दी। वह नहीं जानता था कि पहली रात की शाम से सविता यहां अकेली कमरे में चुप बैठी है और आवाज सुनने पर भी कुछ बोल नहीं रही है।

"नहीं।" सविता ने संक्षिप्त में इतना ही कहा और उसने अपना सिर फिर झुका लिया। यह तो वही जानती थी कि यहां आने से उसे दुःख था या सुख, अफसोस था या खुशी, लेकिन शरम का आवरण उसके ऊपर इतना चढ़ गया था कि वह साफ-साफ कुछ कह भी नहीं सकती थी।

आज की रात !

आज की रात ने सविता को गूंगी बना दिया था। सारी चंचलता हर ली थी। चपलता का नाम भी नहीं था, उसमें। बस, शांत थी, मौन, किसी पत्थर की मूर्ति की तरह।

"फिर तुम चुपचाप क्यों बैठी हो ?" सखीचंद ने पूछा।

सखीचंद का ऐसा प्रश्न पूछना उसको अच्छा नहीं लगा। इस प्रश्न का वह क्या जवाब दे उसकी समझ में नहीं आया। क्या नारी, जो पहले-पहल ब्याह कर ससुराल आयी है, कमरे में बैठी है, इस तरह के प्रश्न का उत्तर दे सकती है···? कदापि नहीं। जवाब देना बेहयायों का ही काम हो सकता है, लज्जाशील औरत का नहीं।

फिर भी कुछ कहना ही उसने उपयुक्त समझा--"योंहीं।"

"मुझे एक सलाह लेनी थी।" सखीचंद ने कहा।

"क्या ?" सविता का आधा ललाट, जो घूंघट में ढका हुआ था, हटाते हुए उसने पूछा—"क्या सलाह लेनी है ?" और उसने समझा, शायद सखीचंद के मन में अभी तक सुहाग रात, या पहली रात की गुदगुदी नहीं उठी है। लगता है, इसे रोजी और रोजगार की चिंता सता रही है। ऐसे अवसर पर भला यह सब भी सोचा जाता है ? रोजी-रोजगार की फिक्र तो आजीवन करनी होती है, मगर यह रात, इस तरह की मनोहारी, कजरारी रात जीवन में कभी नहीं आ सकती। जिन्दगी में केवल एक रात ! जब पति और पत्नी आपस में पहले-पहल मिलते हैं। सविता को सखीचंद की बुद्धि पर तरस आया। फिर दो क्षण बाद उसके दिमाग में यह बात जम गई कि किसी नारी को पति मिले तो इसी तरह का, जिसे सुहागरात तक की फिक्र नहीं है, रोजी के आगे। इस तरह के विचार वाले पति ही तो अपनी औरतों को खुश रख सकेंगे।···

"मैं सोच रहा हूं कि···" कहते-कहते जैसे अटक गया हो, सखीचंद और उसने सविता की ओर देखा। आज नये परिधान में सजी वह गुड़िया-सी सुन्दर और कोमल लग रही थी। आज जितना सुन्दर कभी नहीं दीख पड़ी थी, सविता। मांग पर लाल-लाल सिन्दूर मानों उसकी सुन्दरता में चार चांद लगा रहा था, चेहरा गुलाबी हो रहा था। आंखें कजरारी हो रही थीं। पांव में महावर और हाथों में मेंहदी रचाई थी, उसने।

"क्या सोच रहे हो ?" सविता ने आखिर पूछा ही।

"पहले आमदनी के लिए कुछ उपाय सोचा जाय।" सखीचंद ने भूमिका बांधते हुए कहा।

"तुम अब कलाकार हो ही···।" सविता ने कहा—"इसके अलावा मैं भी कुछ उपार्जना कर सकती हूं।"

"वह कैसे ?"

"पढ़ी-लिखी हूं ही। लड़कियों के किसी विद्यालय में मास्टरनी का काम कर लूंगी।" सविता ने कहा।

"तुम्हारा ऐसा करना, मैं पसन्द नही करूंगा।" सखीचंद ने अपना मत व्यक्त किया जो वह प्राय: गांवों में सुना करता था— "यह नही हो सकता कि मर्द के रहते औरत अर्थ-व्यवस्था के प्रयत्न करे। उसको पढ़ाया इसलिए नही जाता कि नौकरी करके वह धन पदा करे और कार्यालयों में मर्दों के मनोरंजन का साधन बने। बल्कि औरतों को पढाया इसलिए जाता है कि वह घर की व्यवस्था भली-भांति कर सके। पैसा पैदा करना पुरुषों का काम है। और घर चलाने का भार औरतों पर है। इसी कारण औरतों को घर की रानी और मर्दों को बाहर का राजा कहा गया है। परिवार के यही दो स्तम्भ पहिये हैं और जब दोनों पहिये अपना-अपना काम इसी आधार पर ईमानदारी से करेंगे तो परिवार सुखी होगा, सम्पन्न होगा !!"

"यहां तो पत्थरों का काम बहुतायत से होता होगा ?" सविता ने पूछा। वह जानती थी कि सखीचंद उसका पति पत्थर का काम अच्छी तरह जानता है और इसी के लालच में वह यहां आया भी है। अत: उसको खुश करने और उसके मन की बात रखने के लिए उसने यह प्रश्न किया।

और सविता का कहना अक्षरश: सत्य निकला। इसी प्रश्न से सखीचंद मुस्कुराया और कहने लगा—"हां, यहां पत्थरों का धन्धा प्रमुख है।"

"तब ?"

"तब यदि किसी दुकान पर रहकर केवल मजदूरी की जाय तो हमारा पेट नहीं भर सकता।" सखीचंद ने कहा—"और हम

योंही इस जिन्दगी को गंवाने को मजबूर हो जायेंगे। फिर हमारी माली हालत एकदम खराब हो जायेगी और हम एक बार फिर धन कमाने की ही चिंता में लग जायेंगे।"

सविता के मन में भी यही भाव जगे। यदि मजदूरी की जाय तो हम दाने-दाने को मोहताज हुए रहेंगे, क्योंकि इस देश में मजदूरों को कभी सुख नहीं हुआ है। मजदूरी ही पर्याप्त नहीं मिल पाती है। मनुष्य जीवन, मशीन बन कर देश की आवश्यकताओं को पूरा करता है, पसीना और खून एक कर खुद मशीन बन जाता है, पर बदले में मिलता है—भूख और गरीबी, अपमान और चिंता। वह दिन-रात काम में जुटा रहता है, उसे दुनिया की खबरों से कोई वास्ता नहीं रहता। दिन-रात काम। यदि लड़का या पत्नी बीमार हो जाये तो पैसे और दवा की कमी के कारण वह छटपटाता रहता है। घर में जेवर-बासन जो होते हैं, उन्हें अच्छे सूद पर गिरवी रखता है और तब इलाज करवाता है। इस पर भी यदि वह काम न करे तो खायेगा क्या? अतः काम की चिंता हरदम बनी ही रहती है। मजदूरी और गरीबी, आधुनिक भारत के लिए, गणतंत्र भारत के लिए, एक खुली चुनौती है, जिसे अपनी शान समझ कर आज के नेताओं को स्वीकार करना चाहिए और ईमानदारी से इसे दूर करने में जुट जाना चाहिए। लेकिन आज के नेताओं में ऐसी सद्-बुद्धि जग सकती है?···यहां तो सुनने में आ रहा है कि अमुक मंत्री ने इतने लाख की सम्पत्ति बना ली, अमुक नेता का इतना करोड़ विदेश में बैंक में जमा है। यह सब क्या ईमानदारी की आवाजें हैं···?

"काम तो तुम्हें यहां मिल ही जायगा?" फिर भी सविता ने पूछा।

"सच पूछो तो यही जानने की इच्छा से आज मैं बाजार में

दूर तक चला गया था।" सखीचंद कहने लगा—"सामान वगैरह तो लाना था ही, साथ ही यह भी देखता आया हूं कि यहां की कारीगरी किस तरह की है।"

सविता ने अपने भाग्य को सराहा। कभी-कभी उसका मन यह जानकर कचोट उठता था कि पति मिला मनचाहा, मगर गंवार और अशिक्षित। मगर पति को पत्नी के साथ जीवन निर्वाह की चिंता है। वह बहुत आश्वस्त हुई। मन ही मन खुश भी हुई कि जीवन अच्छी तरह कट जायेगा, ज्यादा उतार-चढ़ाव नहीं हो सकता। फिर भी उसने पूछा—"कैसा अनुभव हुआ?"

सखीचंद ने यह सुनने के बाद सविता की ओर ताका और सविता के नजदीक सरकता हुआ कहने लगा—'मैंने देखा और कारीगरों से बहुत-कुछ पूछा भी। यहां की कारीगरी तो अच्छी है। उच्च कोटि की भी कही जायगी, मगर यहां के कारीगरों को सफाई नहीं आती। मूर्ति को गढ़ देना ही यहां के कारीगर ज्यादा अच्छा समझते हैं। मूर्ति पर पालिश करना या साफ रखना नहीं जानते। जिस तरह सोने का गहना बनाकर साफ न किया जाय या उस पर पालिश न की जाय तो वह नया नहीं दिखाई देता, इसी प्रकार यदि पत्थर की कारीगरी को पालिश से चमकाया नहीं गया तो वह मूर्ति कुछ जंचती नहीं। भद्दी दिखाई देती हैं, ये मूर्तियां। यदि इन्हें थोड़ा-सा सफाई का ज्ञान हो जाय तो यहां की मूर्तियां सर्वत्र आसानी से बिक सकती हैं और इनकी कारीगरी में एक निखार आ सकता है।"

सविता चुप बैठी यह सब सुन रही थी।

रात हो रही थी। सर्वत्र सन्नाटा छा गया था। पशु-पक्षी सभी अपनी-अपनी नीदों में बच्चों के साथ बैठ सुख की निद्रा सो रहे थे। पृथ्वी भी शांत थी, लेकिन अपनी धुरी पर निरंतर घूम

रही थी।

"यहां कारीगरों में एक गलत प्रवृत्ति मुझे देखने को मिली, जिसे भले ही कोई सह ले, परन्तु मैं इसको बर्दाश्त नहीं कर सकता।" सखीचंद ने कहना आरम्भ किया और सविता ने सुनना और वह कह रहा था "जो कारीगर थोड़ा कला जानते हैं या थोड़ा काम करते-करते जिनका हाथ साफ हो गया है, वह नये या कम काम जानने वाले कारीगरों पर हमेशा रौब जमाये रहते हैं, रौब से काम लेते हैं। ठीक मछलियों की भांति जो बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है और वह छोटी मछली अपने से छोटी मछलियों को खा जाती है, इसी क्रम में। एक तो अधिकांश वे मजदूर गरीब होते हैं बेचारे और दूसरे ऊपर से उस्तादों का रौब-धौब, इस पचड़े में उनकी विकसित आत्मा कुम्हला जाती है, मर जाती है, दब जाती है!!! यही कारण है कि उनका हाथ निखरता नहीं।"

"यह तो महा अन्याय कहा जायगा।" सविता ने कहा।

"ठीक दल-बदलुआ विधायक की भांति।" सखीचंद ने मुस्कुरा कर सविता का घूंघट खींच दिया और कहने लगा--"जो स्वार्थ के लिए अपने मतदाताओं की तनिक भी परवाह न कर दूसरे दल में शामिल होकर जनता के कामों में बाधा डालते हैं।"

घूंघट खींचने के बाद सविता थोड़ी शरमाई थी। उसे ध्यान आ गया कि आज पहली रात है, सुहाग की रात और वह शादी के बाद एकान्त कमरे में पति के पास बैठी है। लेकिन दल-बदलुआ विधायकों की बात ने उनका मूड फेर दिया और वह भी कहने लगी, चूंकि वह सब-कुछ जानती थी—"इसमें जनता बेचारी क्या कर सकती है। उसे तो मत देने के बाद पांच वर्ष तक कर्म पर हाथ रखकर चुप बैठकर सब-कुछ केवल देखते रहना है। चाहे उस क्षेत्र

का विधायक, विधान सभा में नही जाय। बेचारी जनता चाहकर भी कुछ नहीं कर सकती। केन्द्रीय सरकार की स्वार्थपूर्ण नीति का परिहास अब हो रहा है। जब एक विधायक अपने क्षेत्र का काम नहीं करता या दूसरे दल में जा मिलता है, तब विधायक पर कोई कार्यवाही नही की जा सकती और जनता चाहकर भी उस विधायक को वापस नही बुला सकती। इस तरह की दल-बदल से राज्य का काम ठप्प पड़ जाता है और गरीब जनता मारी जाती है।"

"यह तो राजनीति की बातें हैं।"

"नही, मैं राजनीति नहीं जानती।" सविता ने कहा—"मगर जिस राजनीति से जनता का नुकसान होगा, उसे सभी जानते हैं और जानना चाहिए भी और जानने के बाद उसका विरोध भी खुल कर करना चाहिए।"

"तब जीवन की गाड़ी को किस तरह आगे ले जाया जायेगा ?"

"क्या इरादा है आपका ?" तुम से अब सविता आप पर आ गई। अब वह महसूस करने लगी थी कि यह गांव का गंवार, अनपढ़, रामपूजन के साथ काम करने वाला माली, तथा पत्थर की दुकान पर काम करने वाला नौकर नहीं, बल्कि उसका पति था, सर्वस्व ! उसने पूछा—"आपको जो भी समझ में आया हो, कहिए।"

"मेरा तो अपना विचार है कि एक दुकान खोल कर बैठा जाय।" सखीचंद कह रहा था और सविता ध्यान से सुन रही थी और सखीचंद कह रहा था—"इससे एक तो यह फायदा होगा कि कोई बंधा हुआ काम नहीं करना पड़ेगा। दूसरे मजदूरी से जान बचेगी, तीसरे मूर्तियां बिकने पर मुनाफा अधिक होगा। तभी हम आदमी कहे जा सकेंगे, वरना एक नाली के कीड़े की भांति जीवन

तो बीतेगा ही।"

"इसके लिए तो पूंजी की आवश्यकता पड़ेगी।"

सखीचंद ने सविता की ओर ताका और बोला—"हां पैसों की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। बिना पैसों के कोई काम भी तो नहीं हो सकेगा। यह बात सही है, यह मानव के पतन की पहली निशानी है।"

"कितने रुपयों की आवश्यकता पड़ सकती है ?" सविता ने पूछा।

सखीचंद सोच रहा था कि लागत की बात वह कहे या न कहे। वह इस कारण कि पैसा तो सविता ही दे सकती है और इसके पास कितने रुपये हैं, उसको पता न था। बस वह तो प्रेम और प्यार पर विश्वास कर सविता के साथ चला आया था। अन्तिम दिन गांगी पार बगीचे में सविता ने कहा भी था कि पैसा मेरे पास है, हम लोग कहीं दूर चले चलें। फिर भी कहने और न कहने की अदल-बदल में वह चुप भी तो नहीं रह सकता था। अंत में हिम्मत से काम लिया, उसने—"पाच हजार तक लग सकता है।"

"पांच हजार ?" सविता की जैसे आंखें ही फट गयी हों। उसने आश्चर्य से पूछा और मन ही मन हिसाब लगाया कि इतने रुपये तो उसके पास हैं नहीं। अतः किस तरह इतनों का प्रबन्ध किया जा सकता है। यहां इस शहर में उसका परिचित भी कोई नहीं था। उसने सखीचद को एक सलाह दी—"पहले किसी अच्छी दुकान पर कुछ दिन काम करें। इससे यह फायदा होगा कि आपकी कारीगरी यहां की तुलना में कैसी है, आपको ज्ञान हो जायगा। तब जैसा उचित समझियेगा, करियेगा। मेरा सहयोग तो आपके साथ रहेगा ही।"

हालांकि सविता ने अच्छी बात कही थी। यदि एक बार बिना

सोचे समझे पूंजी लगा दी जाय तो घाटा होने का भय बना रहेगा और सारी जानकारी के बाद यदि रुपये लगाये जाएं तो घाटा लगने की उम्मीद नहीं रहती है, भले ही कुछ नुकसान ही क्यों न हो जाय। लेकिन उस नुकसान से हिम्मत नहीं टूटती।

साथ ही सखीचंद को सविता का यह सुझाव बहुत ही अच्छा लगा था। लेकिन कारीगरों का अभद्र व्यवहार करना, बात-बात पर गाली देना या डांट-डपट कर काम करने को कहना, उसको अच्छा नहीं लगा। उसका मन कांप गया कि एक कारीगर को यदि अनजाने में यहां के कारीगर अपमानित कर देंगे, तब क्या हो सकता है। उसने यह भी सोचा था कि दुकान खोलकर बैठ जाने से कारीगरों पर एक छाप पड़ेगी और कारीगरी अच्छी होने के नाते दुकानदारों पर भी। अतः उस वक्त पैसा और यश दोनों एक साथ मिल सकते हैं। उसने कहा—"किसी दूसरे कारीगर के मातहत मुझसे काम न होगा।"

"क्यों ? सविता को एकदम से आश्चर्य हुआ।

"किसी गैर का रोब मुझसे सहा नहीं जाता।" सखीचंद ने कहा—"वैसे समय में जबकि मुझसे गलती न हुई हो। काम, जब मैं ठीक कर ही रहा हूं, तब रोब का सवाल ही नहीं उठता मेरे पास स्वाभिमान की ज्यादती है और इसी स्वाभिमान के चलते मैंने मेहनत करना सीखा है। सोचा है—यदि मैं अपना काम ईमानदारी से अच्छी तरह करूंगा, तब कोई रोब क्यों, जमायेगा ? इसी रोब, धौंस और बेगार के चलते मैंने अपना गांव छोड़ दिया, अपनी जन्मभूमि त्याग दी। हालांकि मुझे अपना जन्मस्थान छोड़ने का दुःख है, परन्तु तुम्हें पाने के बाद पुरानी सारी स्मृतियों को भूल-सा गया हूं।"

"दुकान के बारे में पक्की राय है न आपकी ?"

"हां, एकदम पक्की।" सखीचंद ने कहा और सविता का एक हाथ पकड़ लिया और उसकी तलहथी को देखने लगा, जिस पर मेंहदी रची गई थी और तरह-तरह की नक्काशी की गई थी। नक्काशी की बारीकी और सफाई को ध्यान से देखने लगा। दो क्षण बाद वह उछल-सा गया और खुशी से कहने लगा—"यह क्या···?"

सविता मन ही मन हँस रही थी। वह समझ गई थी कि सखीचंद ने असल बात समझ ली है।

"इसमें तो एक अभागे का नाम भी है···!"

सविता मौन रही।

सखीचंद ने उस हाथ को चूम लिया और कहने लगा—"तो दुकान के लिए तुम्हारे पास कितने रुपए हैं?"

"कुल तीन हजार।"

"तब दो हजार का कैसे इन्तजाम होगा?" सखीचंद ने कहा और सविता की ओर देखा। जब उसने कुछ नहीं कहा तो उसने पुनः कहा—"तुम्हारे कुछ गहने बेचने पड़ेंगे।"

सविता मौन मूर्ति की भांति बैठी रही। इस बार उसने अपना चेहरा अपने दोनों घुटनों के बीच छिपा लिया था।

सखीचंद ने समझा, शायद गहना बेचने के नाम से सविता को अच्छा नहीं लगा है। अतः उसने कहा—'चुप हो गई सविता! यदि गहना बेचना नहीं चाहती हो तो कोई बात नहीं, हम किसी दुकान पर ही काम करेंगे, परन्तु मैं तुमको दुखी नहीं देखना चाहता।"

"आप यह भी क्यों नहीं सोचते कि मैं आपको चिंताग्रस्त नहीं देखना चाहती?" सविता ने साफ-साफ कह दिया—"जब राज, सुख और वैभव छोड़कर आपके साथ चली आई हूं, तब गहनों की

कौन फिक्र करे ? आप सुरक्षित और सकुशल रहोगे तो बहुत सारे बन जायेंगे।"

"सच ?" खुशी हुई सखीचन्द को।

सविता ने सिर हिलाकर 'हां' कह दिया।

"तब तो तुम बहुत अच्छी पत्नी हो।" और उसने अपना हाथ सविता की ओर बढ़ाया।

"हटिये !" और हाथ को झटकते हुए उसने कहा—"आप बड़े वो हैं !"

"नाराज होने से काम नहीं चलेगा, सविता।" और सखीचंद ने टिमटिमाते हुए मिट्टी के दिये को बुझा दिया। फिर अंधेरे में ही कहा—"इस रात तो मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

कमरे में अंधेरा छा गया।

उसी समय कहीं से बारह का घन्टा सुनाई दिया। रात अपनी जवानी पर थी। आधी रात हो गई थी। सर्वत्र नीरवता का साम्राज्य था। यहां तक कि पृथ्वी भी सो रही थी। मगर सविता और सखीचंद दोनों अब भी जाग रहे थे।

दस

सविता का पता लगाने में गौरी बाबू ने अपनी ताकत लगा दी।

चक्रवर्ती बाबू ने पता लगाया, छानबीन की तो सारी स्थिति साफ हो गयी। उन्हें यह भी पता लग गया कि शाम को सात बजे के लगभग सखीचन्द बिना मालिक से कहे एक घंटे के लिए कहीं गया था। एक बार वह और इसी तरह बिना कहे एक-डेढ़ घन्टे के लिए दुकान से गायब था। जिस रात से सविता गायब थी, उसी रात से सखीचन्द भी गायब है। सखीचन्द ने मालिक से साफ-साफ कह दिया था कि अब वह यहां कभी काम नहीं करेगा। रात को वह कहीं अन्यत्र दूसरे देश में चला जाएगा।"

चक्रवर्ती बाबू ने सारी रिपोर्ट गौरी बाबू को दे दी थी। उस दिन तो गौरी बाबू चुप रह गए। दूसरे दिन फिर चक्रवर्ती बाबू को बुलाया और राय-सलाह की। न्यायाधीश महोदय की राय थी कि इस केस को पुलिस में दे दिया जाय, शायद कहीं उनका पता लग जाय। सविता की याद वे भूल नहीं पाते थे। किसी भी कीमत पर वे सविता को देखना चाहते थे, उनका दिल रह-रहकर यह जान कर कांप जाता था कि अब वे कभी सविता को नहीं देख सकेंगे,

क्योंकि वह भाग कर गई है, अतः वह स्वतः यहाँ लौट कर नहीं आ सकती।

चक्रवर्ती बाबू का तर्क था कि पुलिस में मामला देने पर खानदान पर आंच आने की आशंका है। सभी लोग कहेंगे कि जज महोदय की लड़की भाग गयी।

अन्त में काफी विचार-विमर्श के बाद यह तय किया गया कि मामला पुलिस में न दिया जाय। यदि संभव हो तो पुलिस से योंही मदद ली जा सकती है। चक्रवर्ती बाबू ने स्वयं पता लगाने का विचार प्रकट किया। इससे गौरी बाबू को काफी आशा बंधी। फिर भी उनका हृदय गवाही नहीं देता था कि अब जीवन में कभी सविता से भेंट भी हो सकेगी। उनका हृदय सविता को प्यार करता था। उनका वात्सल्य उसको अपनी पुत्री समझता था, उसको देखना चाहता था!!!

सविता के जाने के बाद से गौरी बाबू काफी उदास रहने लगे, कई बार उनकी पत्नी श्रीमती स्वरूपादेवी ने उन्हें समझाने की चेष्टा की। परन्तु वह बात को समझ जाते तथा कहते—"तुम यही न कहोगी कि सविता ने हमारे हित में अच्छा नहीं किया तो हम उसके लिए क्यों मरें? यह कहना जितना आसान है, करना उतना ही कठिन। किसी आत्मीय स्वजन की मृत्यु के बाद लोग उन घर वालों को यह कहकर समझाते हैं कि एक दिन सभी को इस दुनिया से उठ जाना है, परन्तु समझाने वाले पर यही घटित होना है तो वह अपना होश-हवास खो बैठता है। मैं स्वतः सविता को भूलने की चेष्टा में हूँ, मगर दिल नहीं मानता, हृदय नहीं मानता!!!" इतना सुनने के बाद श्रीमती स्वरूपादेवी कुछ नहीं कह पातीं और गौरी बाबू उसकी याद में घुलते रहे, भुनते रहे, जलते रहे!!!

चक्रवर्ती साहब ने सविता का पता लगाने में काफी मेहनत की। कभी दिल्ली, कभी कलकत्ता, कभी बम्बई, कभी मद्रास, देश के प्रत्येक बड़े शहर को छान मारा, परन्तु उनका कहीं पता नहीं चल सका चक्रवर्ती साहब जब लौटकर आते और उदास चेहरा लिये गोरी बाबू के सामने जाते तो चक्रवर्ती साहब का चेहरा देखते ही गोरी बाबू उदास हो जाते और कहते—"उसका कहीं पता नहीं चला। खैर कोशिश कीजिये।" और चक्रवर्ती बाबू दूसरे शहर में जाने की तैयारी में लग जाते।

इसी तरह समय की गति आगे बढ़ती गई। एक माह बीत गया, दूसरा आया। वह भी समाप्त हुआ, तीसरा आया। चौथा, पाँचवां और छठा भी बीत गया। एक साल बाद उन्हें पता चला कि एक ऐसा ही छोटा परिवार जोधपुर में बसा है, किंतु पति-पत्नी के एक वर्ष की एक बालिका भी है। बालिका की बात पर गोरी बाबू को अचरज भी हुआ कभी विश्वास होता कि नहीं, वह सविता नहीं हो सकती। कभी हृदय गवाही देता कि हो सकता है सविता ने एक बच्ची को जन्मा हो।

मन में वाद-विवाद समाप्त कर उन्होंने चक्रवर्ती साहब को वहां भेजने का निश्चय किया। कचहरी में दोनों के नाम वारंट कटवाया गया और वारंट के साथ चक्रवर्ती साहब जोधपुर के लिए रवाना हो गये। वारंट के साथ न्यायाधीश महोदय का एक पत्र भी था जो वहां की पुलिस के नाम था।

जोधपुर पहुंचकर चक्रवर्ती साहब वहां के एस० पी० से मिले और न्यायाधीश महाशय का पत्र दिया। साथ ही उन्होंने सारी स्थिति का वर्णन भी किया। एस० पी० साहब से इन्सपेक्टर को बुलाकर नजदीक के थाने में साथ ही भेजा और हिदायत की कि सारा काम आज ही उनकी इच्छानुसार होना चाहिए।

पुलिस इन्सपेक्टर के साथ चक्रवर्ती महाशय थाना गये। थानेदार ने चक्रवर्ती महाशय से कहा—"आप यहीं आराम करें। तब तक मैं उनको खबर भिजवा देता हूं। हम लोग शाम को चलेंगे।"

"बहुत अच्छा!" और चक्रवर्ती साहब ने आराम करना उचित समझा और थानेदार ने एक सिपाही को समझा-बुझाकर उनके पास भेज दिया।

सिपाही जिस समय वहां पहुंचा सखीचन्द अपनी दुकान पर बैठा काम कर रहा था और भीतर दरवाजे के पास सविता बैठी अपनी एक मात्र बच्ची को दूध पिला रही थी और सखीचन्द की ओर प्यार भरी नजरों से देख रही थी।

दोनों सुखी थे। अपनी दुकान खोली थी, सखीचन्द ने। तब से उसको फुर्सत नहीं मिलती थी। सविता के कहने पर एक लड़के को रख लिया था उसने। उसके हाथ की बनाई वस्तुएं बाजार में नहीं पहुंच पाती थीं। बम्बई के एक व्यापारी ने सभी वस्तुओं की खरीद का ठेका ले लिया था, अतः अच्छी आमदनी हो जाती थी, सखीचन्द को। सविता के जो गहने बिक गए थे, वह नये बन गए। दोनों का प्यार पूर्ववत था, अतः दोनों सुखी थे, खुशी थे!!

"क्या आपका ही नाम सखीचन्द है?"

सखीचन्द अचरज से भर गया। जल्दीबाजी में उसे यह नहीं सूझा कि झूठ बोल दे। उसने कहा—"जी! मेरा ही नाम सखीचन्द है। क्या बात है?" और वह उठकर बाहर आ गया।

"कोई खास बात नहीं है।" सिपाही ने कहा—"बिहार के शाहाबाद के किसी न्यायाधीश महाशय के कहने पर आपका पता लगाने कोई बी० एम० चक्रवर्ती नाम के एक आदमी आये हैं।"

"च...क्र...व...र्ती..." कहते-कहते अटक गया जैसे सखी-

चन्द। उसे याद नहीं आ रहा था कि यह चक्रवर्ती साहब कौन हो सकते हैं।

उसी समय भीतर से सविता ने कहा—"जी हां! मैं चक्रवर्ती साहब को पहचानती हूं। वे कब आ रहे हैं, यहां?"

सिपाही ने अन्दर देखने की चेष्टा की—"पुलिस अफसर के साथ शायद शाम को आएं।"

"कुछ संदेश भी है, उनका क्या?" तभी सखीचन्द ने पूछा।

"कोई खास संदेश तो नहीं है।" सिपाही ने कहा—"शाम को दोनों आदमी घर ही पर रहियेगा, यही उन्होंने कहा है।"

सखीचन्द मन-ही-मन बहुत ज्यादा डर गया था अतः घबराहट के लक्षण उसके चेहरे पर झलकने लगे थे। तब भी साहस बटोर कर उसने कहा—"जी, अच्छी बात है। इसके लिए आपको धन्यवाद!"

और सिपाही वापस चला गया।

सिपाही को वहां से चला गया देख, सखीचन्द ने झटपट अपनी दुकान बंद की और घर में चला गया। दरवाजे पर से उठ कर सविता भी आंगन में पहुंची। सविता के वहां पहुंचते ही सखीचन्द ने पूछा—"अब क्या होगा, सविता?"

"क्या कहूं?" सविता ने अपना माथा पकड़ लिया और वहीं जमीन पर बैठ गयी। बोली—"कुछ समझ में नहीं आता…!"

"कुछ-न-कुछ करना ही होगा, अब।" सखीचन्द भी सविता के पास ही बैठ गया और उसकी ओर अपलक ताकता हुआ कहने लगा—"पिताजी को सब-कुछ ज्ञात हो गया है। एक मास बाद भी जब हम पारिवारिक स्थिति में आ गये हैं, हम लोगों का पता लगवा लिया है। उनका क्रोध अब तक शांत नहीं हुआ है। सामने जाने पर क्रोधवश कुछ नयी बातें हो सकती हैं। अतः जो कुछ

करना हो, जल्दी और सोच-समझ कर करना होगा, वर्ना हमको जीवन भर पछताना ही पड़ेगा। हाथ कुछ आएगा नहीं।''

सविता भी भयभीत हो गयी थी। उसे इस तरह की आशा न थी। उन्हें एक बच्ची होने के साथ ही यह भी विश्वास हो गया था कि अब उनका पता किसी को नहीं लग सकेगा, क्योंकि वे आरा से बहुत दूरी पर थे और एक ऐसे शहर में थे जहां कोई सोच भी नहीं सकता था। मगर रह-रहकर कभी-कभी सविता को डर-सा महसूस होता। मन का एक कोना फुफकारता पत्थर की कारीगरी करने के कारण सखीचन्द की टोह में शायद कोई जयपुर, जोधपुर, राजस्थान इत्यादि शहरों में आ सकता है। क्योंकि दोनों एक ही साथ, एक ही दिन घर से निकले थे और रामपूजन एवं माताजी को मालूम था ही कि सविता सखीचन्द को प्यार करती है। सविता सोच रही थी कि यदि सखीचन्द पिताजी के सामने पड़ जायेगा तो उनका क्रोध शायद और भी बढ़ सकता है, क्योंकि सखीचन्द उनका माली रह चुका था। यदि ऐसी बात हुई तो उसको गोली भी मार सकते हैं। कोई यह नहीं चाहता कि पुत्री किसी नीच और अनाड़ी के साथ सम्पर्क रखे। काफी सोचने-विचारने के बाद उसने कहा—"सरल उपाय तो यही है कि आप यहां से कहीं अन्यत्र चले जाएं···।'

"और तुम पिताजी के सामने पड़ो ?" व्यंग्य मिश्रित शब्दों में सखीचन्द ने कटाक्ष किया।

सविता ने इसका कुछ भी अनुभव नहीं किया। वह कहने लगी, "इसके अलावा चारा ही क्या है ? यदि आप पिताजी के समक्ष पड़ते हैं तो अनर्थ होने की संभावना है और मैं स्वयं जाती हूं तो वे कुछ बातें कह के ही रह जायेंगे। उनका हाथ मेरे ऊपर उठ नहीं सकता। वे चाह कर भी बुरा-भला नहीं कह सकते। आखिर

उन्होंने मुझे पाला-पोसा जो है।"

सखीचन्द को ऐसा करना गवारा नहीं हुआ। वह नहीं चाहता था कि सविता अकेली ही पिताजी के सामने जाए। वह बोला—"तो तुम अकेली ही उनके पास जाओगी ?"

"मैं उनके पास जा कहां रही हूं ?" सविता ने कहा—"यहां चक्रवर्ती साहब शाम को आ रहे हैं। साथ में पुलिस का एक अफसर भी होगा। तब आप क्या समझते हैं कि बिना उचित कार्यवाई किये वे यहां आये हैं ?"

"उचित कार्यवाई में बहुत-सो बातें हो सकती हैं।" सखीचन्द कहने लगा—"फिर भी उन्होंने कुछ तो किया ही होगा, जिस से हम टाल-मटोल न कर सकें और सीधे से वापस हो जायें।"

सविता चुप रह गयी। उसने कुछ कहा नहीं। केवल लड़की को प्यार भरी नजरों से देखती हुई न जाने क्या-क्या सोचती रही।

तभी सखीचन्द ने कहा—"तुम्हारा अकेली जाना मुझे पसंद नहीं।"

"और आपका उनके समक्ष पड़ना, महाकाल को बुलाने के समान है।" सविता ने तपाक से उत्तर दिया—"आपको किसी भी रूप में अभी उनके सामने पड़ना ही नहीं है।"

"यदि हम दोनों एक साथ ही उनके समक्ष जायें तब ?" सखीचन्द बोला—"जो कुछ होगा अपनी आंखों के सामने ही तो होगा और उससे हमें सन्तोष होगा।"

"सन्तोष तो होगा ही।" सविता ने झुंझला कर कहा—"आप यह क्यों नहीं सोचते कि मैं उनकी सन्तान हूं। मेरा वे कुछ नहीं कर सकते। यदि करना भी चाहेंगे तो ममता रोक लेगी, वात्सल्य वैसा नहीं करने देगा और आप अभी तक उनके लिए वही नौकर हैं, माली! फिर कहीं आपके साथ···" और सविता मौन

हो गयी।

"परिणाम चाहे जो भी हो, मैं तुम्हें अकेली नहीं जाने दूंगा।"

"और यह किसी भी रूप में नहीं हो सकता।" सविता का स्वर भी दृढ़ था।

"नहीं।···तो यह भी नहीं हो सकता। अपनी पत्नी और संतान को छोड़कर किसी डर से मर्द यदि भागता है तो वह कायर कहलाता है।" सखीचन्द ने सविता को समझाने का दूसरा ही रास्ता अपनाना चाहा।

"कायर, गीदड़ या शेर की बात यहां नहीं है। यहां जरूरत है समझदारी की, होशियारी की, जिससे सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।" सविता बोली—"जिद् करने से फायदा न होगा।"

"मैं तुम्हें छोड़कर स्वर्ग में भी नहीं जा सकता।"

"वह तो एक दिन जाना ही होगा और सभी को जाना होगा" सविता ने कहा—"आप प्यार, मोह और बंधन वश ऐसा कह रहे हैं मगर इस कहने का अर्थ तब कुछ नहीं रह जाता जब स्वर्ग का दूत प्राण लेने इस धरती पर आ जाता है। उस समय सभी इच्छाएं, सभी वादे धरे-के धरे ही रह जाते हैं। उस वक्त अपना-पराया कोई नहीं पूछता। सब-कुछ इसी धरती पर छोड़कर जाना ही होता है।"

"चाहे जो भी हो, तुम अकेली उनके पास नहीं जाओगी।" सखीचन्द ने कहा—"मैं तुम्हें जाने ही नहीं दूंगा।"

सखीचन्द की जिद्द-भरी बातों से सविता को रोष हो गया। वह आवेश में कहने लगी—"तब आप चाहते हैं कि अपनी आंखों से आपकी तड़पती हुई लाश देखूं ?···आप यह चाहते हैं कि मैं विधवा बनकर जीवन भर तड़पती रहूं ? अपने सिन्दूर को

अपने ही हाथों पोंछकर साफ कर दूं, इस लड़की का सहारा छीन लूं…?"

"बस करो, सविता ! बस करो।" सखीचन्द ने अपने माथे पर हाथ धर लिया—"कभी स्वप्न में भी मैंने यह नहीं सोचा था कि इस तरह का समय भी हमारे सामने आ सकता है।"

"जो वक्त आना होता है, वह आना ही है। उसे कोई रोक नहीं सकता और किसी के सोचने-विचारने की वह परवाह भी नहीं करता।" सविता बोली—"अक्लमन्दी यही है कि वक्त से कुछ फायदा उठाया जाय। नहीं तो कुछ दिनों बाद वह चला ही जायगा और ऐसी परिस्थिति कभी नहीं आ सकती।"

सखीचन्द चुप था।

सविता ने ही मौनता भंग की—"क्या सोच रहे हैं, अब ? माथा पकड़कर सोचने का समय नहीं है, जो कुछ निर्णय करना हो, कीजिये। यदि कहीं चक्रवर्ती साहब आ गए तो कुछ नहीं होगा, सब धरा का धरा ही रह जायेगा।"

"क्या करूं, मैं ?" सखीचन्द ने नरमी से कहा—"तुम्हें छोड़कर यहां से जाने को जी नहीं चाहता।"

सखीचन्द के इस वाक्य से सविता भी दुखी हुई। उसे भी अफसोस था कि आज उसे अपने पति को छोड़कर अकेली पिता के पास जाना पड़ रहा है। उसको इस बात की ग्लानि नहीं थी कि सखीचंद के साथ वह भागकर क्यों आई, बल्कि इस बात का डर था कि पति के अलग होने के बाद क्या होगा ? फिर सखीचन्द कभी मिल सकेगा या नहीं। यदि पिताजी नहीं चाहेंगे तब क्या हो सकता है ! उनके आगे सविता की कुछ भी नहीं चल सकती। उसने कहा—"मैंने औरत होकर जब अपने कोमल सीने पर विशाल पत्थर रख लिया है, तब आप तो एक पुरुष ही हैं।" सविता ने सखीचंद का

एक हाथ पकड़ लिया—"उठिये, चलिये। जो लेना-देना है, ले-दे लीजिए और जल्दी यहां से चले जाइये। इतनी दूर चले जाइए जहाँ आपका कोई पता न पा सके।"

सविता थर-थर कांप रही थी, उसका गला बैठ गया था। हृदय टूटता हुआ जान पड़ा, उसका।

"कहाँ जाऊंगा, मैं?" सखीचन्द ने कहा और बच्ची को गोद में लेता हुआ बोला—"अब इस बच्ची को कौन प्यार करेगा। और मुझे यह अब कहाँ मिल सकती है। मेरी बच्ची......।" और उसने बच्ची को छाती से लगा लिया। सखीचन्द का गला भर आया था। आंखों में पानी की बूंदें तैरने लगी थीं।

सविता ने साड़ी के छोर से अपनी आंखें पोंछीं और बोली—'देर न कीजिए। मुझे डर लग रहा है कि कहीं चक्रवर्ती साहब न आ जायं।"

"अच्छा है, चक्रवर्ती साहब अभी आ जायं।" सखीचन्द ने भर्रायी आवाज में कहा—"इस बिछुड़न से तो बेहतर है कि पिता जी के हाथों मर जाना। शरीर तो नष्ट हो जायगा, मगर आत्मा को तो सन्तोष होगा।"

"देर न कीजिये।" प्रार्थना भरे स्वर में सविता ने पति से कहा और बच्ची को अपनी गोद में लेने के लिए हाथ बढ़ाया।

सखीचन्द ने सविता की ओर देखा और बोला—"बच्ची के साथ-साथ मेरी ममता, वात्सल्य और स्नेह को मत बटोरना, सविता!"

"आप अपना दिल छोटा न करें।" सविता ने कहा—"भगवान ने चाहा तो हम जल्दी आपस में मिलेंगे।"

"आजकल भगवान कहीं नहीं है, सविता।" सखीचन्द का हृदय बैठता जा रहा था—"इस धरती पर जो है सो आदम ही

है। वह जो चाहेगा, वही होगा। आज इतनी महंगाई है कि आदमी मर रहा है, तब भगवान कहां है। आज पुत्री पिता से, पत्नी पति से, पिता पुत्री से और पति पत्नी से अलग हो रहा है तो भगवान कहां है ?"

"बच्ची मुझे दीजिए और अन्दर चलिए।" और बच्ची की ओर हाथ बढ़ाने के साथ सविता ने प्यासी नजरों से अपने पति की ओर देखा, जिसके साथ वह एक साल तक रह चुकी थी।

सखीचन्द ने अपनी भर आयी आंखों से सविता की ओर देखा और बच्ची को उसकी गोद में दे दिया।

"चलिए।"

न चाहते हुए भी सखीचन्द को कमरे में जाना पड़ा। वहां पहुंचते ही सविता ने बक्से का ताला खोला और नोटों का बंडल सामने लाकर रख दिया—"इन्हें आप अच्छी तरह रख लीजिए।"

सखीचन्द ने नोटों को देखा और सविता की ओर देखकर कहने लगा—"परिवार को त्यागने के बाद इन नोटों को मैं प्यार कर सकूंगा।"

"यह कागज के नोट आपको प्यार तो न कर सकेंगे, फिर भी कुछ दिनों तक आपको सुरक्षित रख सकेंगे।" सविता बोली।

"कुछ अपने पास भी तो रख लो।" सखीचन्द ने कहा।

"मुझे रुपयों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, शायद।" सविता कहने लगी—"चक्रवर्ती साहब के आने से निश्चित है कि मैं शाहाबाद जाऊं। तब मैं पैसा क्या करूंगी ?"

"कुछ तो रख लो।"

बात रखने के लिए सविता ने उसमें से एक नोट निकालकर

अपने हाथ में ले लिया और कहने लगी—"साथ में कुछ कपड़े भी ले लीजिये। बाहर का मामला है, आवश्यकता पड़ ही सकती है। हां, इन मूर्तियों का क्या होगा?"

"यह बात तो समय पर कही, तुमने।" कुछ क्षण सोचने के बाद सखीचन्द ने कहा—"मकान के किराए में मकान-मालिक के लिए छोड़ देना और एक पत्र भी दे देना ताकि उनके आने के बाद उन्हें ज्ञात हो जाय। बड़ा सज्जन था बेचारा। बिना कुछ सोचे-समझे ही सारा घर हम लोगों पर छोड़ दिया।" और कपड़ों को इकट्ठा कर एक गठरी बांधने लगा।

सविता अपलक अपने पति को देखती रही।

गठरी बांध चुकने के बाद सखीचन्द उठकर खड़ा हो गया। बोला—"तो मुझे जाना ही होगा?"

"इच्छा तो नहीं होती, पर किया ही क्या जा सकता है।" और सविता की आंखों से पानी बहने लगा।

"अंत में हिम्मत बांधो सविता।" सखीचन्द ने कहा—"मैं जल्दी ही मिलूंगा तुमसे।" और उसने अपनी जन्मी, प्यार की निशानी बच्ची को अपनी गोद में ले लिया तथा चूमता एवं प्यार करता हुआ बाहर दरवाजे तक आया।

उसके पीछे-पीछे सविता भी थी उदास चेहरा तथा आंखों में नीर लिये हुए। दरवाजे तक आते ही सखीचन्द ने प्यार भरी नजरों से सविता की ओर देखा और बच्ची को एक बार पुनः चूम लिया।

बच्ची हाथ-पांव हिला-डुलाकर खेल रही थी। उसे तनिक भी ज्ञान न था कि आज वह अपने पिता से, पिता के प्यार से विलग हो रही है।

तभी सविता ने धीरे से कहा—"थोड़े दिनों बाद पता लगा

लीजियेगा कि मैं यहां हूं या नहीं। यदि यहां हुई तो कोई बात ही नहीं है और यदि न हुई तो आप शाहाबाद चले आइयेगा।"

सखीचंद ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

अब सविता रो पड़ी—"मुझे भूल मत जाईयेगा!"

"ऐसा भी कभी कहा जाता है?" सखीचंद सविता की आंखों से बाहर आ गए आंसुओं को प्यार से पोंछता हुआ बोला—"पगली!...जिसके लिए मैंने इतनी साधना की, दिन-रात मिहनत कर एक कला को हासिल किया, उसी को भूलने की बात कर रही हो, तुम? चांद मिट सकता है। सूर्य मिट सकता है। यहां तक कि सारे तारे भी समाप्त हो जा सकते हैं, परन्तु हमारा प्यार और दृढ़ प्रेम अमर रहेगा।"

दोनों चुप रहे। कोई कुछ कह नहीं रहा था। उसी वक्त सामने से एक काली बिल्ली गुजरी। सविता ने उसको देख लिया। बोली—"मेरा हृदय बैठा जा रहा है।" और बच्ची को अपनी गोद में लेने के लिए उसने हाथ बढ़ाया।

"किसी भ्रम में न पड़ना और न किसी बात को सोच-विचार में ही इस धरोहर शरीर को घुलाना।" और उसने बच्ची को अन्तिम बार चूमकर सविता की गोद में डाल दिया—"मैं जल्दी ही मिलूंगा।"

और अपनी गठरी लेकर सखीचंद एक कदम आगे बढ़ा। मगर न जाने क्या सोचकर वह ठमक गया। एक हाथ से उसने सविता का बायां हाथ पकड़ा और प्यार से दबा दिया। परन्तु किसी के चेहरे पर खुशी न थी। दोनों की आंखों से आंसुओं की धारा लगातार बह रही थी। दोनों एक-दूसरे को देखते हुए भी चुप थे।

बिछुड़न की अन्तिम घड़ी थी न !

"अच्छा, विदा।" और सखीचंद वहां से चल दिया। गली के मोड़ पर पहुंचते ही उसने पीछे मुड़कर अपने घर की ओर, अपनी बच्ची की ओर, अपनी प्यारी पत्नी सविता की ओर देखा। सविता भी दरवाजे पर खड़ी उसी की ओर, उसको जाते हुए देख रही थी।

सखीचंद आंखों से ओझल हो गया।

और सविता वहां खड़ी एकटक तब तक देखती रही, जब तक कि उसका पति आंखों से ओझल नहीं हो गया। आंखों से ओझल होते ही वह अन्दर चली गई और कमरे में जाकर जार-बेजार रोने लगी।

बच्ची भी रोने लगी, उस समय।

उजाला समाप्त होने में अभी देर थी।

विधि का क्या विधान है कि आज उसका पति उससे अलग कर दिया गया। जिस गांव के गंवार और घर के नौकर को पाने के लिए उसने क्या-क्या नहीं किया। माता का अपमान सहा, रामपूजन की नजरों में गिरी, सभी कुछ तो उसने किया। यहां तक कि बैरिस्टर और धनी पति को त्याग दिया। महान पिता का प्यार, छोटी बहन सावित्री का प्रेम, सब-कुछ त्यागकर वह इस पति को पा सकी थी। अन्त में उसने अपने खानदान की इज्जत को भी बलिदान के दाव पर लगा दिया था। अमीर घराने की लड़कियां ऐसा कभी नहीं कर सकतीं। यदि किसी गरीब को प्यार करेंगी तो जिस्मी भूख मिटाने के लिए, कुछ दिनों तक उसके साथ खेलने के लिए और उसकी आत्मा को कलुषित करने के लिए। अमीर लड़कियां किसी गरीब लड़के के एहसान नहीं मानतीं। उनका प्यार सच्चा नहीं होता।

उसका विचार इसी उधेड़-बुन में उमड़ रहा था। दिन थोड़ा-सा शेष रह गया था। वह काफी उदास हो गई थी। इस वक्त वह सोच नहीं पा रही थी वह उठकर क्या करे। बच्ची रोते-रोते उसकी गोद में सो गई थी। उसने उसको बिछावन पर सुलाकर ऊपर चादर डाल दी और मन मारकर बैठी रही।

कुछ देर बाद वह आंगन में आई और आसमान की ओर देखा, आकाश साफ था। कुछ देर देखने के बाद उसे ऐसा पता चला कि सखीचंद उड़ता हुआ चला जा रहा है, बहुत तेजी से। उसका जाना, तेजी से जाना सविता देखती रह गई और उससे देखा नहीं गया, तब उसने अपनी आंखों को अपने हाथों से ढक लिया - "ओह ! किस्मत ने किस-किस तरह का खेल रचा होगा ?"

कुछ देर बाद उसने अपनी आंखें खोलीं और छप्पर की ओर देखा। यहां बैठे दो कबूतर एक-दूसरे से चोंच मिलाकर अपना-अपना प्यार जता रहे थे। सविता का हृदय कसक उठा—"ऐ भगवान ! क्या मुझे चैन से भी नहीं रहने दोगे ?" और उसने आंखें बन्द कर लीं।

आंख खोलने के बाद उसने महावीरजी के चबूतरे की ओर देखा। उस पर अभी-अभी जो प्रसाद चढ़ाया गया था, उसको चुहिया नोंच-नोंचकर खा रही थी। बांध में बंधे झंडे की ओर ऊपर देखा—एक कौवा बैठा 'कांव-कांव' की रट लगा रहा था। यह सब उससे देखा नहीं गया और वह आंगन में 'धम्' से बैठ गयी।

कुछ देर बाद बाहरी दरवाजे पर किसी के द्वारा दी गयी दस्तक की आवाज उसने सुनी—"थप······! थप···!!······थप······!!!"

वह उठकर खड़ी हो गई। उसने अपना आंचल ठीक किया।

ग्रांसुग्रों को साड़ी के छोर से रगड़कर पोंछा। बोली—"कौन ?"

बाहर से पुनः दस्तक की ग्रावाज ग्रायी—"थप ! थप !! थप !!!"

सविता तब तक खिड़की में चली गयी। पूछा—"कौन ?"

"पुलिस।" बाहर से ग्रावाज़ ग्राई।

'पुलिस' शब्द सुनने के बाद भी सविता पर कुछ ग्रसर नहीं पड़ा। वैसे पुलिस का नाम सुनते ही एक संदेह उत्पन्न होता है, एक शक पैदा होता है, परन्तु सविता जानती थी कि शाम को पुलिस के साथ उसके पिता के प्राइवेट सचिव जरूर ग्रायेंगे। उसने ग्रागे बढ़कर दरवाज़ा खोल दिया। पूछा—"क्या बात है ?… ग्राप लोग किसे ढूंढ़ रहे हैं ?"

"यदि मैं भूल नहीं रहा हूं तो ग्रापका नाम श्रीमती सविता देवी होना चाहिए।" उसी समय चक्रवर्ती साहब ने सामने ग्राकर सविता के प्रश्न का उत्तर दिया।

"जी…हां।" सविता ने कहा—"मेरा नाम सविता देवी ही है।"

चक्रवर्ती साहब ने कहा—"मुझे तो ग्राप पहचानती ही होंगी…?"

"कुछ-कुछ ख्याल ग्रा रहा है कि मैंने ग्रापको कहीं देखा है, किन्तु……"

चक्रवर्ती साहब ने बीच में ही टोक कर कहा—"ग्रापके पिता गोरी बाबू का मैं निजी सचिव हूं।"

"ग्रोह !" सविता को याद ग्राया—"मैं ग्रापको पहचान गई, ग्राइये, ग्राप लोग ग्रन्दर ग्राइये।" ग्रौर ग्रांगन की ग्रोर ग्राकर दो दरी बिछा दीं ग्रौर खड़ी रही।

चक्रवर्ती, इन्सपेक्टर तथा तीन सिपाही भी ग्रांगन में ग्राए

श्रोर दरी पर बैठ गए। सविता ने पूछा—"कहिए पिताजी अच्छे तो हैं?"

"जी।" चक्रवर्ती साहब ने कहा—"आपके ही लिए वे काफी दुखी रहा करते हैं।"

सविता ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह अन्दर कमरे में गयी और पांच तश्तरियों में दो-दो मिठाइयां लाकर बोली—"आप लोग जलपान करें।" और वह गिलास में पानी का प्रबन्ध करने लगी।

चक्रवर्ती महाशय को अचम्भा हुआ। क्या यह वही सविता है, जो कभी किसी को पूछती तक न थी? किसी से भर-मुंह बात तक नहीं करती थी? हरदम उसके मुंह चाय लगी रहती थी। मगर मेहमानों के लिए चाय का प्रबन्ध कर गांव के अतिथियों की भांति मीठा और ठन्डा जल का इन्तजाम किया। उसने सोचा—एक साल में सविता एकदम बदल गयी है, इसका चेहरा बदल गया है, इसकी चाल बदल गई है।

जलपान के विषय में 'ना' या 'हां' कहकर किसी ने बात नहीं बढ़ाई। गिलास में पानी आते ही चक्रवर्ती साहब ने मुंह में एक मिठाई डाल ली। इन्सपेक्टर एवं सिपाहियों ने भी वैसा ही किया।

गिलास का पानी पीते हुए इन्सपेक्टर ने पूछा—"सखीचंदजी कहीं दिखाई नहीं देते, कहीं गए हैं क्या?"

पुलिस मतलब की साथी-दाती है। सविता ने सोचा और जवाब दिया—"जी, वे बाहर गए हैं।"

"कब तक लौटेंगे?"

"कोई ठीक पता नहीं है।" सविता ने उपेक्षा से कहा।

चक्रवर्ती साहब समझ गये कि सखीचंद को सविता ने रजा-

मन्दी से यहां से हटा दिया है, क्योंकि बातों का रुख यही बता रहा था। उन्हें ऐसा विश्वास न था कि सखीचंद नही मिलेगा। शायद गौरी बाबू के भय से वह हट गया हो। उनको खबर नही भिजवाना चाहिए था। एकाएक यहाँ आ जाना चाहिए था। खैर, यह जानकर इनको सन्तोष हुआ कि सविता, जिसके लिए गौरी बाबू चिन्तित थे और जिसकी खोज के लिए वह शहर-शहर की खाक छान रहा था, सुरक्षित मिल गई। यदि यह भी कहीं चली जाती, तब···

इन्सपेक्टर साहब ने चक्रवर्ती की ओर देखा और दोनों का आशय चक्रवर्ती साहब समझ गए और समझने के बाद उन्होंने कहा—"कोई बात नही है, इन्सपेक्टर साहब, मुझे इनकी ही खास तौर से तलाश थी। इनके वगैरह इनके पिता काफी बेचैन हैं।"

अब पुलिस इन्सपेक्टर ने पहले चक्रवर्ती बाबू की ओर देखा और तब सविता की ओर देखकर कहने लगे—"सवितादेवी! आपको यह सब ज्ञात हो ही गया होगा कि हम यहां क्यों आये हैं? चक्रवर्ती बाबू यदि अकेले ही आपके पास आते तो हमें कुछ लेना-देना नहीं था। हमारे आने का मतलब कानून का सहारा ही हो सकता है असल बात यह है कि आपके तथा आपके पति श्री सखीचंद जी के नाम वारंट है। यह वारंट आगरा के अनुमंडलाधिकारी की ओर से जारी की गया है। वारंट ही हमारे लिए काफी था मगर चक्रवर्ती बाबू के आने से इतना तो साफ हो ही गया है कि हमें इनके अनुसार ही चलना है। यह जैसा कहेंगे वैसा ही करना है। इसी-लिए मैंने सखीचंद के बारे मे पूछा था। यह तो मैं समझ ही गया हूं कि सखीचंद कहीं चले गए हैं, और वह आपकी रजामंदी से ही गए होंगे। मै उनकी भी खोज सख्ती से करता, परन्तु आपकी इज्जत का भी हमें ख्याल रखना है। खैर, सखीचंदजी न सही, मगर आपको चक्रवर्ती बाबू के साथ स्वेच्छा से आगरा जाना होगा।

यदि आप ऐसा नहीं करेंगी तो बाध्य होकर मुझे महिला पुलिस का सहारा लेना ही पड़ेगा।" और उसने सविता की ओर देखा।

सविता की इच्छा थी कि वह इसका विरोध कर दे, मगर यह जानकर कि यहां कोई गोरी बाबू को उतना नहीं जानते। अतः सारा घूंट पीकर वह बोली—"उसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"आप अपना सभी सामान यहां आंगन में इकट्ठा कीजिए।" इन्सपेक्टर साहब ने कहा—"मेरे ये सिपाही भी सामान को बांधने में मदद करेंगे।"

"धन्यवाद !" सविता ने कहा और अन्दर जाकर सामान निकालने लगी। सारा सामान बांधने के बाद सविता ने इन्सपेक्टर से कहा—"घर के मालिक कहीं तीर्थयात्रा पर गए हैं। उनका हमारे पास पांच महीने का मकान किराया बाकी है। दुकान में काफी औजार और कुछ तैयार पत्थर की मूर्तियां रखी हुई है, जिनको मकान के किराए मे मैं छोड़े जा रही हूं। कृपया इसका उचित प्रबन्ध कर देंगे ताकि मकान मालिक के दिल में किसी प्रकार के भाव न उठ सकें।"

"इसकी चिन्ता आप न करें।"

तब तक एक सिपाही ने आकर खबर दी कि बाहर एक टैक्सी खड़ी है। सामान को पीछे और ऊपर रखा गया और चक्रवर्ती साहब के साथ सविता गाड़ी की पिछली सीट पर बैठ गई और ड्राइवर के साथ इन्सपेक्टर और सिपाही भी। गाड़ी स्टेशन की ओर दौड़ चली।

स्टेशन पर पहुंचते ही गाड़ी आ गई। जल्दी से दो टिकिट आरा के लिये गये तथा सिपाहियों की मदद से उनको गाड़ी में बैठाया गया। सारा सामान भी लादा गया।

गाड़ी जब छूटी, सविता की आंखों में नीर भर आए। उसे

याद आई एक साल पहले की बात, जब वह पहले-पहल यहाँ आई थी और आज वह मलीचन्द को छोड़कर अकेली ही वापस जा रही थी।

कैसी है यह दुनिया……?"

ग्यारह

गौरी बाबू आज ज्यादा बेचैन थे। बाहर के बरामदे में चहल-कदमी कर रहे थे। उनका सिर झुका हुआ था। किसी समस्या का हल ढूंढने में व्यस्त थे। कानून के ज्ञाता और सरकार के उच्चपदस्थ अधिकारी, भला इस तरह के अपमान को सह सकते थे ?

अभी-अभी तक तो सब-कुछ सही था। मगर…

सविता के साथ जिस लड़के की सगाई हुई थी, वह गौरी बाबू के खानदान एवं उनकी प्रसिद्धि से ज्यादा प्रभावित था। वह चाहता था कि गौरी बाबू के साथ रिश्ता होना शुभ कर होगा। एक तो वह उनका जमाई कहलायेगा तथा बाद में सारे धन का वारिश भी होगा। उसने कहलवा दिया था कि यदि सविता के साथ उसकी शादी नहीं हुई तो न हुई। यदि सावित्री के भी साथ कर दी जाय तो बात कुछ बिगड़ती नहीं है, वर्ना सारी बदनामियों को वह न्याया-धीश महाशय पर ही मढ़ेगा।

बरामदे से कभी कमरे में तथा कमरे से कभी बरामदे में भी आ जाते थे वे। उनके कदम तेजी से उठ-गिर रहे थे।

इस समय उनके पास कोई नहीं था। वह अकेले ही थे। आज कचहरी भी नहीं थी। रविवार का दिन था। सर्वत्र छुट्टियां थीं। सभी कार्यालय बन्द थे। सारा मजमा ढीला पड़ा हुआ था। उनका इरादा था कि आज ही अन्तिम निर्णय हो जाय वर्ना यह मामला एक हफ्ते के लिए टाला जा सकता है, क्योंकि सिवाय रविवार के उनको इस तरह की बातों पर विचार करने का समय ही नहीं मिलता और वे चाहते भी नहीं थे। सरकारी काम के दिनों में किसी और तरह के पचड़ों से वे अपने दिमाग को विकृत नहीं करना चाहते थे।

चहल-कदमी करते हुए वे अपनी पत्नी श्रीमती स्वरूपादेवी के आने का इन्तजार कर रहे थे। थोड़ी देर पहले एक नौकर को भेजा था। अभी तक वही नहीं आई। घर के सारे आदमियों का दिमाग लगता है फिर गया है। कोई सुनने ही वाला नहीं है। सभी अपनी-अपनी लगाए हुए हैं। यह भी कोई रास्ता है? घर का एक मालिक, एक जिम्मेदार, तब न घर चलेगा!

श्रीमती स्वरूपादेवी के आने में ज्यों-ज्यों देर हो रही थी। गौरी बाबू की बेचैनी व्याकुलता और इन्तजार करने की सीमा बढ़ती जाती थी। उनको देखने के लिए ही वे कभी-कभी बरामदे में भी आकर चहल-कदमी करने लगते थे।

थोड़ी देर बाद श्रीमती स्वरूपादेवी आईं, उस समय गौरी बाबू कमरे में थे। वह अन्दर ही चली गई।

उसको देखते ही गौरी बाबू बड़बड़ाये—"इन लड़कियों ने तो मेरे नाकों में दम कर दिया है। पढ़ा-लिखाकर मैंने बहुत बड़ी गलती की है। लगता है, सारे खानदान की इज्जत धूल में मिल

जाएगी। लड़का किसी तरह मानता नहीं। सावित्री राज़ी नहीं होती। कहा भी गया है कि यदि औरतों के नाक न हो तो वे तीन जगह, तीन बार मटकें।"

"औरतों को ही आप दोष क्यों दे रहे हैं ?" श्रीमती स्वरूपा-देवी भीतर-ही-भीतर तड़फ उठी। यह क्या बात ? काम करे उनकी लाड़ली और दोष मढ़े जायं सभी औरतों पर। एक के चलते सभी को बदनाम करना उचित नहीं। सभी एक घाट का पानी नहीं पीते, सभी का एक-सा दिमाग नहीं होता।

"तो क्या करूं मैं ?" गौरी बाबू उस समय अपने-आप में नहीं थे। चिन्ता, क्रोध एवं बेचैनी से व्यस्त थे। वह कहने लगे—"सगाई के बाद एक तो सारी इज्जत-आबरू पर लात मारकर भाग ही गई। उसने यह तनिक भी नहीं सोचा कि वह यह सब क्या करने जा रही है। उसका भी पता अब लग सका है। एक साल बाद। न जाने वह किस स्थिति में अभी हो। एक हमारे कब्जे में है, उसका भी दिमाग खराब हो गया है। पता नहीं इन्होंने क्या-क्या करने को सोचा है।"

"लड़की है, दुलार से कुछ कह नहीं रही है।" श्रीमती स्वरूपा देवी ने अपनी बेटी सावित्री की तारीफ की। यदि सावित्री सीधे रास्ते पर होती तो वह सविता की ऐसे अवसरों पर खूब शिकायत करती, ताकि उनका ध्यान सविता की ओर से फिर जाय। ज्यादा न सही थोड़ा ही। लेकिन स्वयं सावित्री भी उस युवक के साथ शादी करने से इन्कार कर रही थी।

"लड़कियों का यह दुलार किस काम का, जिसके कारण पिता को बेइज्जती का सामना करना पड़े, 'चिन्ता से व्याकुल रहना पड़े दिन-रात सोच विचार में रहे?" गौरी बाबू ने कहना जारी रखा—"लड़का धमकी दे रहा है कि सावित्री ने यदि शादी न की तो न

सही। सावित्री के साथ ही उसकी शादी कर दी जाये। जब उस घर में मगनी हो गयी है और लड़की है ही, तो क्यों न उसके साथ उसकी शादी करदी जाय। अब इसका क्या जवाब दूं? मेरी तो अब अकल काम ही नहीं कर रही है।"

कोई चारा न देख श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहा—"उसको लिख दीजिये कि हम लोग प्रयत्न कर रहे हैं। घबड़ाने से क्या होगा?" शायद अब भी इसको आशा थी कि वह सावित्री को शादी के लिये राजी कर लेगी। और वह चाहती भी थी सावित्री की शादी हो जाय तो अच्छा है। इसके लिये श्रीमती स्वरूपा देवी ने ही गौरी बाबू को सुझाव दिया था, तब तक लड़के वालों की ओर से भी इसी तरह का प्रस्ताव आ गया। पहले तो स्वरूपा देवी प्रसन्न हुई थी, लेकिन जब सावित्री ने साफ इन्कार कर दिया तब वह ऊम-चूम में रह गयी

"कहने से या बात टालने से काम नहीं चलेगा, सावित्री की मां।" न्यायाधीश महोदय कहने लगे—"उनका कहना है कि एक साल हो गया, अभी तक प्रयत्न या कोशिश ही की जा रही है। तुम लोग औरत हो। घर के भीतर का हाल जानती हो। मैं मर्द हूं, मुझे बाहर की ओर देखना होता है। सभा में जवाब देना होता है। पत्रों का उत्तर लिखना होता है। मैं नहीं समझता हूँ कि यह स्थिती क्या है। तुम लोग क्या जानो।"

"समझाने-बुझाने से वह राजी हो सकती है।" श्रीमती स्वरूपा देवी अब भी गौरी बाबू को विश्वास दिला रही थी।

"यदि राजी हो जाती है तब राजी कराकर क्यों नहीं इस बखेड़े का अन्त करती?" गौरी बाबू ने चहल-कदमी करते ए एक बार गौर से अपनी पत्नी श्रीमती स्वरूपा देवी की ओर देखा और चुप हो गये। उस समय उनका चेहरा कुछ-कुछ लाल हो

रहा था।

इसका जवाब श्रीमती स्वरूपा देवी ने तत्काल नहीं दिया। निरुत्तर हो गयी थी। सावित्री को लाख समझाया था, मनाया था, लालच दिया था!!! परन्तु वह अपने विचारों से तिल भर हटने या सरकने को तैयार नहीं थी।

गौरी बाबू ने पुनः कहा—"तुम भी तो लगातार प्रयत्न कर रही हो?"

कोई जवाब नहीं दिया श्रीमती स्वरूपा देवी ने इस बार भी।

"आखिरी बार तुम फिर उसको समझाकर राजी करने पर कोशिश करो।" न्यायाधीश महोदय ने फिर कहा—"यदि कहीं मेरे सामने उसने साफ इन्कार कर दिया तो मेरा गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ जायगा। तब भगवान ही जानता है कि क्या होगा। शायद अनर्थ होने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। तुम मां हो। उसको अच्छी तरह समझाओ और राजी करो। यदि वह राजी हो जाय, जैसी कि संभावना नहीं है, तो वह मेरे सामने आकर इतना ही कह दे कि जैसा आप चाहें करें मैं राजी हूं, बस काम समाप्त और वे चुप हो गये।

काफी देर तक मौनता छायी रही।

सूरज ऊपर उठ आया। दिन का पूरा अवसान था। चारों ओर उजाला ही उजाला। तारों का कहीं नामो-निशान भी नहीं था। बाग में फूल तरह-तरह के खिल रहे थे। सर्वत्र शांति थी। सामने सड़कों पर चहल-पहल थी। कारें आ-जा रही थीं। इक्का आ-जा रहे थे। रिक्शे आ-जा रहे थे। और आदमी भी आ-जा रहे थे, साथ ही जानवर भी!

"तब तक आप···" श्रीमती स्वरूपादेवी ने जानबूझकर अपना वाक्य पूरा नहीं किया, क्योंकि वह जानती थी कि गौरी बाबू फिर

कहेंगे कि इन्तजार तो आज एक साल से कर रहा हूं और तुम मुझको आश्वासन ही दे रही हो कि सावित्री राजी हो जायगी, राजी होगी यह ठीक है। परन्तु कब तक राजी होगी···?

तब भी बीच से ही बात काटकर गौरी बाबू ने कहा—"तब तक मैं प्रतीक्षा करूंगा या हो सका तो बाग में जाकर कुछ देर टहलूंगा। तुम जाओ और अपना काम करो। मब करते-करते तो इतना समय हो गया।" और चहल-पहल करते-करते वे जो कुर्सी पर बैठ गये थे, उठकर जाने को खड़े हो गये।

श्रीमती स्वरूपादेवी भी उठकर खड़ी हो गयी और बाहर बरामदे में आयी। गौरी बाबू एकदम से बाग की ओर चले गये। वह सावित्री के कमरे की ओर चल पड़ी। रास्ते में वह सोच रही थी कि बात किस तरह की जायेगी ! लड़की जिद पर आ गयी है। न जाने उस छोटे-से छोकरे सखीचंद ने कौन-सा मंत्र फूंक दिया है कि उसका भूत इसके दिमाग से उतरता ही नहीं। जब देखो, तब सखीचंद, सखीचंद। यह सब क्या था, उनकी समझ में नहीं आ रहा था ! सखीचंद––गरीब, भिखमंगा, गंवार जाहिल। इस तरह के आदमी से कहीं पढ़ी-लिखी लड़कियां शादी करती हैं ? एक तो सविता बेवकूफ निकली, जिसने ऐसी गलती की। आज वह सुख से थोड़े ही होगी ! यदि वह आज एक बैरिस्टर की पत्नी होती तो मोटरों में घूमती तथा शान के साथ किसी बंगले की रानी बनकर बुलबुल की भांति चहकती। और वही भूत आज सावित्री पर भी सवार दिखाई दे रहा था।

श्रीमती स्वरूपादेवी को कहीं भी इसका निदान दिखाई नहीं दिया। फिर भी वह सावित्री के कमरे की ओर बढ़ी जा रही थी। बढ़ीजा रही थी, लेकिन वह सोच नहीं पायी थी कि उसको क्या करना होगा। यह प्रथम अवसर नहीं था, जब श्रीमती स्वरूपादेवी सावित्री

को समझाने जा रही हो। वह कई बार इसको प्यार से, दुलार से तथा धमकाकर भी समझा चुकी थी, परन्तु सावित्री ने कहा था कि मैंने जो एक बार कह दिया सो कह दिया। उससे वह मिल कर भी नहीं हट सकती, न डिग सकती!!

इसी सोच-विचार में वह सावित्री के कमरे के पास पहुंच ही गयी। वहां पहुंच कर उसने देखा कि अन्दर से दरवाजा बन्द है। पल्ले से अन्दर का भाग दिखाई देना कठिन था। वह खिड़की के पास गई। खिड़कियां भी बन्द थीं, मगर शीशे से अन्दर का हिस्सा साफ नजर आ रहा था। अपनी आंख को शीशे के नजदीक ले जाकर उसने देखा—अन्दर सावित्री औंधी पलंग पर पड़ी है। उसने अनुभव किया कि वह रो रही होगी! लेकिन कुछ सुगबुगाहट नहीं होती! तब शायद वह सो गई है। खिड़की से हटकर वह दरवाजे के पास आ गई और दरवाजा खटखटाया—"खट!...खट!!... खट!!!..."

कोई शब्द नहीं! कोई हरकत नहीं!! केवल निस्तब्धता!

"खट्!...खट्! खट्!!!..." उसने पुनः दरवाजा खट-खटाया। इस बार की 'खट खट' की आवाज से सावित्री सुगबुगाई तथा सिर उठाकर अनुमान लगाया कि आने वाला कौन हो सकता है। तभी श्रीमती स्वरूपादेवी ने पुनः दरवाजा खटखटाया—"खट!...खट!!...खट!!!..."

सावित्री ने उठकर दरवाजा खोल दिया और आने वाले व्यक्ति को जो कि उसकी मां हैं, उसने कुछ नहीं कहा। बल्कि एक बार गौर से मां के चेहरे की ओर देखकर वह अपने पलग पर जाकर चुपचाप बैठ गयी।

"तबियत खराब है क्या?" श्रीमती स्वरूपादेवी ने प्यार से पूछा और दरवाजे के पास से चलकर सावित्री के पास आ गई,

एकदम पास, पलंग के निकट।

सावित्री पर इसका कुछ भी असर नहीं पड़ा, क्योंकि वह सिर झुकाकर पूर्ववत ही बैठी रही। यह दूसरा समय था, जब सावित्री किसी को जवाब देने में, या विवादों में भाग लेने में कभी पीछे नहीं हटती थी, वही आज प्रश्न करने पर भी मौन थी। लगता था वह कष्ट की तस्वीर हो, पत्थर की मूर्ति!!

जब से सविता दीदी इस घर से गायब हुई हैं, वह मां पर अधिक नाराज थी। वह समझ गयी थी कि उस पर रोक लगाकर उसके शरीर और उसकी आत्मा को पिंजड़े में बांधकर उसकी मां श्रीमती स्वरूपादेवी ने उसके साथ, उसकी जिन्दगी के साथ खिलवाड़ किया है, मनमानी की है, जिसकी माफी नहीं दी जा सकती, क्षमा नहीं किया जा सकता!! यदि उसकी मां प्रथम बार उस पर रोक नहीं लगाती तो आज वह भी सविता की भांति लखीचंद के साथ होती। धनी रहती या गरीब, सुख होता या दुख, मगर आत्मा को तो सन्तोष होता, हृदय को तो शांति मिलती!! आज इस तरह किसी की याद में घुल-घुलकर तो न मरती!

"सावित्री!..." सावित्री के कुछ न बोलने पर उसकी मां ने कहा।

सावित्री मौन थी, उस समय।

"सावित्री!..." पुनः श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा।

सावित्री ने सिर उठाकर अपनी मां की ओर देखा और गुर्रा कर बोली—"क्या है?"

"लगता है, तेरा दिमाग खराब हो गया है?"

"तुमको क्या है?" सावित्री ने उसी टोन में जवाब दिया—"मेरा दिमाग खराब है या सही है, तुमको तो कुछ लेना-देना नहीं। तुम तो सुखी हो न?"

श्रीमती स्वरूपादेवी को सावित्री के ये बोल कड़े लगे। कमाल है, वह बेटी को सुखी रखने तथा खुशी के लिए वह उसको समझा रही है। और बेटी उनके साथ कस रही है। उसकी इच्छा तो हुई कि वह कुछ कड़े शब्द का व्यवहार करे, मगर परिस्थिति अनुकूल नहीं है, समझकर चुप रह गयी। ममता से वह हार गयी थी। फिर भी उसने कहा—"क्या तुमको यह विश्वास है कि मैंने ही तुम्हारी जिन्दगी बर्बाद की है? ...जबकि तुम्हारी जिन्दगी ही कितने दिन की है?"

"अब मेरी जिन्दगी क्या बर्बाद करोगी मां?" सावित्री ने कहा—"जो कुछ तुमको करना था, तुमने किया। तुमने अच्छा जानकर मुझ पर रोक लगायी, मगर मेरे लिए वह बुरा हो गया और दीदी को गैर समझ कर छोड़ दिया, वह उसके लिए शुभकर हो गया। इसीलिए कहा गया है कि बेवकूफ दोस्त से चालाक दुश्मन कहीं अच्छा।"...

"सावित्री...।"

"यदि इसके बाद भी तुम्हारी कुछ तमन्नाएं शेष रह गयी हैं तो उनको भी पूरा कर लो। जो सोचा है वह भी कर गुजरो।" सावित्री किसी की परवाह किये बिना ही कहने लगी—"ताकि तुमको यह अफसोस न रहे कि तुमने कुछ किया ही नहीं।"

"सखीचंद को तू नहीं भूल सकती?"

"नहीं, कभी नहीं। जीवन भर नहीं!!" सावित्री ने कड़क कर कहा—"तुम जब तक जिन्दा रहोगी, मैं उसको नहीं भूल सकती।"

श्रीमती स्वरूपादेवी को अपनी सन्तान से यह सब सुनना गवारा नहीं था। उसकी आंखें छलछला आयीं। उसने पूछा—"उसी गंवार छोकरे के लिए तू अभी तक तपस्या कर रही है?"

"हाँ।" सावित्री ने उत्तर दिया—"और शायद जीवन भर करती रहूँगी, तपस्या उसके लिए। यदि जीवन में मेरी शादी किसी के साथ होगी तो उसी गंवार छोकरे के साथ, वरना अर्थी तो किसी दिन निकलेगी ही।" और उसकी भी आँखों में पानी भर आया।

सावित्री का अटल प्यार, स्वच्छ प्रेम एवं दृढ़ प्रतिज्ञा देख श्रीमती स्वरूपादेवी को भी काफी दुख हुआ। मगर व्यवहारिक रूप से सावित्री अब सतीचन्द की पत्नी बन ही नहीं सकती थी। सतीचन्द के साथ सविता गई थी। दोनों का साथ रहना हास्यास्पद बात होगी। तब सावित्री का इसी तरह की बात पर एकदम से अड़े रहना अव्यवहारिक-सा लगा श्रीमती स्वरूपादेवी को। उन्होंने नरमी से कहा—'सावित्री, बेटी ! किसी बात पर एकदम से दृढ़ हो जाना उचित नहीं। कम से कम तथ्यों पर तो गौर करना चाहिए कि इस बात का असर भविष्य पर क्या पड़ेगा।"

"भविष्य पर पड़ेगा तो भविष्य बतायेगा।" सावित्री बोली—'जब वर्तमान में ही मैं मिट रही हूँ, मेरा जीवन मिट रहा है, तब भविष्य की चिन्ता कौन करे ?"

खीझकर श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"क्या तू सविता की सौत बनेगी ?"

"इसकी चिन्ता तुमको नहीं करनी चाहिए।" सावित्री का मिजाज आपे में नहीं था। उसका क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ गया था। वह कहने लगी—"सविता की मैं सौत बनूंगी या सविता मेरी सौत बनेगी, इसका नफा-नुकसान हम दोनों बहनों को होगा, तुमको नहीं।"

श्रीमती स्वरूपादेवी सावित्री के जवाब से माँ होते हुए भी निरुत्तर होती जा रही थी। तब भी उसने कहा—"यदि सविता

के कहने से वह गंवार छोकरा इन्कार कर दे कि सावित्री को नहीं अपनायेगा, ऐसी स्थिति में तुम क्या कर सकती हो ?"

"तब मैं शादी करने की लालसा ही छोड़ दूंगी।

"शादी करने की लालसा श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"क्या मतलब ?"

"जीवन भर कुंवारी ही रहूंगी।" सावित्री बोली—"और यह याद रखो कि मैं सविता की भांति चुपके से पेश नहीं आऊंगी। हां, यदि कहीं वह गंवार छोकरा नजर आ जाय तो मैं भी उसी के साथ भाग जाने की चेष्टा में रहूंगी। उस समय मैं किसी की परवाह नहीं कर सकती।"

सावित्री के प्रत्येक जवाब से उसकी मां श्रीमती स्वरूपादेवी का क्रोध बढ़ता ही जा रहा था। अतः कुछ कड़ाई से उसने पूछा—"अपने पिता की नाक कटवाना चाहती है तू ?"

"यह सब तो अपनी सन्तानों को बेवकूफ बनाने अथवा फंसाने का केवल एक ढोंगमात्र है।" सावित्री कहने लगी—"जब संतानों की इच्छा के प्रतिकूल माता-पिता काम करते हैं, तब वे यह क्यों नहीं सोचते कि इससे उनकी सन्तानों की नाक कटती है या नहीं। और जब सन्तान कुछ करती है या करने पर उतारू हो जाती है तो माता-पिता की नाक कट जाती है। बलि का बकरा आज कोई भी नहीं बन सकता। मनमानी करने का युग लद गया। आज जो भी करना चाहे, यदि सबकी सहमति है या सबका सहयोग है तो ठीक है, वरना वह काम कभी नहीं हो सकता। पहले माता-पिता हमेशा सन्तानों के दिल की बातें करते थे, तभी सन्तान उन की इज्जत करती थी, लेकिन आज के माता-पिता अपनी बात रख रहे हैं।"...

श्रीमती स्वरूपादेवी सुन रही थी।

सावित्री ने अपना कहना जारी रखा—"तुमने मेरी तरह सविता दीदी को क्यों नहीं रोका ? मेरे ऊपर ही दबाव क्यों दिया? मुझको ही पिंजड़े में बन्द क्यों किया ? ···इसलिए न, कि दीदी ने तुम्हारी कोख से जन्म नहीं लिया है। अच्छा होता, यदि मैं भी तुम्हारी कोख से पैदा न होती। तो मैं भी आज वही करती जो सविता दीदी ने किया है और मैं सुख से रहती, खुश रहती !!"

"सावित्री !···"

"इस तरह डराने, धमकाने या चिल्लाने से सावित्री तुम्हारे कहने पर नहीं आयगी। मैं अब पूरी घाघ हो चुकी हूँ। एक साल तक सारे सुखों को त्याग दिया है, मैंने।"

श्रीमती स्वरूपादेवी बोली—"सविता ने तो लाज और डर दोनों छोड़ दिया है।"

सावित्री वहां से उठकर खिड़की के पास आयी और बाहर देखा बाहर कोलाहल मचा हुआ था। कहा—"उस वक्त मैं भी लाज और डर छोड़ देती।"

उसके इतना कहते ही श्रीमती स्वरूपादेवी ने सावित्री की ओर गौर से देखा—उसका चेहरा इधर नहीं होने के कारण दिखाई नहीं दे रहा था। पास जाती हुई बोली—"सावित्री ! मां होने के नाते मैं सब-कुछ सह रही हूं। तू जो कुछ भी कह रही है, मैं सुन कर भी चुप हूं, बर्दाश्त कर रही हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि तू इस तरह की बेकार की जिद पर क्यों अड़ी है ? जरा सोचने की बात है कि तू एक गंवार, अशिक्षित आदमी को चाहती है। यह तेरे हृदय की पुकार है, तेरे दिल की सच्चाई है। फिर भी समाज या दुनिया की ओर भी तो देखना चाहिए ! लोग जो सुनेंगे, यही कहेंगे कि जज साहब की पढ़ी-लिखी पुत्री सावित्री एक गंवार युवक के लिए बैरिस्टर तक से रिश्ता करने पर राजी नहीं हुई।

किसकी जग हँसाई होगी, कम-से-कम तुझे यह भी तो सोचना चाहिए।"

मुँह फेरे बिना ही सावित्री ने कहा—"मैं सब-कुछ सोच चुकी हूँ।"

श्रीमती स्वरूपादेवी मौन रह गयीं।

सावित्री फिर कहने लगी—"यह बात सही है कि मेरी जिद को लोग अच्छा न कहकर बुरा ही कहेंगे और लोग हमको पागल या मूर्ख समझेंगे। मगर यह सब जो मैं कह रही हूँ, वह तुम्हारे लिए।"

श्रीमती स्वरूपादेवी ने अचरज से उसकी ओर अपनी आँखें तरेर कर देखा। देखा लेकिन सुन रही थी, चुपचाप। सुन रही थी, जो सावित्री कह रही थी।

"मैं ही दोषी ठहराई जाऊँगी।" सावित्री कह रही थी—"मगर मेरे सामने किसी के कहने की हिम्मत न होगी। जो कुछ भी बाहर होगा, उसका असर तुम पर पड़ेगा और तुमको भी मैं अपनी ही भांति चिन्ताग्रस्त देखना चाहती हूं। मेरी बदनामियों को लेकर जबकि मैं ऐसा नहीं समझती, तुम घुल-घुलकर मरो, यही मैं चाहती हूँ।"

श्रीमती स्वरूपादेवी एकदम से अवाक् रही। यह क्या ? तो सावित्री उससे बदला ले रही है ? बदला लेने का यह कैसा रूप ? स्वयं को मिटाकर दूसरों को जलाना ही बदला है। यह भयंकर बदला है। ओह ! उसने ठीक नहीं किया। इससे तो यही अच्छा था कि वह भी सावित्री पर रोक नहीं लगाती और सविता के साथ यह भी कहीं चली जाती कम-से-कम यह दिन तो कभी न देखने पड़ते। कहा—"क्या बरिस्टर से शादी नहीं करेगी ?"

"नहीं।"

"उस गंवार मखीचंद से ही शादी करेगी ?"

"जब एक बार कह दिया है कि मैं उसी गवार और अशिक्षित युवक के साथ ही शादी करूंगी, तब तुम बार-बार ऐसा क्यों पूछ रही हो ?" सावित्री ने झुंझला कर कहा।

इस पर भी शान्त-भाव से ही श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"तेरे यही ये विचार तेरे पिता को मालूम हों तो तेरी चमड़ी उधेड़ लेंगे। इस पर भी कभी तूने सोचा है ?"

"तुमसे ज्यादा उनको मालूम है मेरी कहानी।" सावित्री ने बाहर थूक कर कहा—"तुम्हारी कहानी उनको नहीं मालूम है, यह सही है। फिर चमड़ी उधेड़ने की बातें कहने की हैं, करने की नहीं।"

"तेरा अन्तिम निर्णय क्या है ?"

"मैं बार-बार नहीं जवाब देती।"

"एक बार और कह दो ?" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा।

इस बार सावित्री ने घूमकर अपनी मां की ओर देखा और चेहरे की ओर गौर देने पर समझ गई कि इस शरीर में सन्तानों के प्रति ममता नहीं है, दया नहीं है। असल में बड़े घरों के माता-पिता के मन में बच्चों के प्रति अधिक प्यार नहीं होता। बड़प्पन का नशा उनको इस दुलार से अलग रखता है। कहा—"यदि शादी होगी तो उसी गवार छोकरे के साथ जिसके साथ तुम डाह करती हो, वर्ना जीवन भर मैं कुंवारी ही रहूंगी और यह भी सुन लो, दुनिया की कोई भी शक्ति मुझे मेरे रास्ते से विचलित नहीं कर सकती।"

इतना सुनने के बाद श्रीमती स्वरूपादेवी दरवाजे की ओर मुड़ी और बाहर जाने के दरम्यान कहने लगी—"मैं तेरे पिता से जाकर कह देती हूं कि······"

सावित्री बीच में ही बोल उठी—"पिता से ही क्यों, तुम मेरे भगवान से भी जाकर कह सकती हो।"

उसकी मां अपने पति के कमरे की ओर बढ़ी। अभी वह पहुंच भी नहीं सकी थी कि एक टैक्सी को फाटक के अन्दर घुसते हुए देखा। देखा और देखते ही पहचान गयी कि चक्रवर्ती साहब आ गये। टैक्सी के खड़े होते ही चक्रवर्ती साहब पहले उतरे। बाद में सविता अपनी बच्ची को गोद में लेकर उतरी। तब तक माली मोटर के पास पहुंचकर सामान उतार रहा था।

श्रीमती स्वरूपादेवी वहां से पति के कमरे में पहुंची। उस समय वे चहलकदमी नहीं कर रहे थे। वे एक कुर्सी पर शांत बैठे थे और उनका सिर झुका हुआ था।

उसी वक्त चक्रवर्ती साहब ने अन्दर प्रवेश कर कहा—"प्रणाम सरकार!"

गौरी बाबू ने सिर उठाकर देखा—"दोनों आ गये?"

बात समाप्त होते ही सविता ने वहां पहुंच कर पिता के पैर स्पर्श किये।

"तुम मेरे पांव छूने लायक नहीं हो, सविता!......" और न्यायाधीश महाशय की आंखें भी डबडबा आयीं, भर आयीं!!

सविता ने इसकी परवाह न की। उसने अपनी बच्ची को आगे बढ़ाते हुए कहा—"अपने नाना के पैर छू, मेरी बच्ची।" और उसने बच्ची को उनके पैरों के पास ही जमीन पर रख दिया और स्वयं दो कदम पीछे हट गयी।

श्रीमती स्वरूपादेवी ने गौर से सविता की ओर देखकर कहा—"गलती आदमी से ही होती है और जब वह पांव पर गिर गई है तब तो......"

गोरी बाबू की आंखों में आंसू आ गये जो बहने ही वाले थे।

सावित्री भी वहां पहुंच गयी और जमीन पर से बच्ची को अपनी गोद में उठाते हुए बोली---"दीदी, चलो मेरे कमरे में।" और सविता का एक हाथ पकड़ वह वहां से अपने कमरे की ओर ले गयी।

बारह

सविता को अपने पिता के पास आए दो माह बीत चुके थे।

दस दिनों तक तो वह अपनी लड़की को संभालने में ही भूली रही थी। उस वक्त उसको जरा भी सतीचन्द का ख्याल न था। बादमें सावित्री औरअपने माता-पिता में लगी रही, जिन्होंने उसको पाला-पोसा था। यह बात सभी जानते थे कि सविता उनकी जन्मी सन्तान नहीं है, बल्कि उसको सदर अस्पताल से लाया गया था। जहां वह पल कर इतनी बड़ी हुई थी, कुंवारी के बाद जवान हुई थी। यह बात सविता भी जानती थी, किन्तु उसको तनिक भी संकोच नहीं होता था। उससे व्यवहार सन्तान की तरह होता था। माता-पिता का भी सारा प्यार उसको मिलता था। कभी गोरी बाबू ने किसी बात का उस पर अविश्वास नहीं किया। इसी कारण अपनी नहीं होते हुए भी अपनी थी।

घर के लोगों से मन भरते ही उसकी जवानी ने पलटा खाया और तब उसको सखीचन्द की याद आने लगी, सताने लगी। और उसके न आने पर वह मन-ही-मन खीझ उठती थी। वह सोचती अब तक तो सखीचन्द को आ जाना चाहिए था। उसने कहा भी था कि एक-दो दिनों तक देखना, यदि वह नहीं गई तो कोई बात नहीं, वर्ना वह आरा अपने पिता के पास चली जाएगी और वह वहां आ जाएगा। तब तक स्थिति भी अनुकूल हो जाएगी। किंतु सखीचन्द अभी तक नहीं आ सका था।

सविता सोचती—वह कहां भटक रहा होगा। किस दिशा में होगा वह। अनजान देश! अनजान पथ! और अनजान राही! न जाने उसका कैसे साथी मिले होंगे, उसने क्या-क्या करवाया होगा। वह कहीं और तो नहीं फंस गया? सोचा होगा एक सविता अपने बाप के पास गई तो कई सविताएं उसको मिल सकती हैं। प्रथम श्रेणी का कलाकार और सुन्दरता का कामदेव! उसकी सुन्दरता ही ऐसी थी कि उसकी ओर जो न आकर्षित हो जाए कम था! मगर सखीचन्द ऐसा भी कभी कर सकता है, सविता का दिल गवाही नहीं देता था। यह बात वह मान भी सकती थी कि गोरी बाबू के डर से या लिहाजवश वह यहां नहीं आ सकता है लेकिन किसी और औरत के जाल में वह फंस सकता है, वह कभी विश्वास नहीं कर सकती थी।

सखीचन्द अपने जीवन में पहली बार सविता को लेकर भागा था। मगर अब वह शायद ऐसा कभी नहीं कर सकता है। वह भाग भी तो नहीं रहा था। सविता ने स्वयं ही भागने की प्रेरणा दी थी, साहस दिया था, प्रोत्साहन किया था!!! वर्ना वासना का भूत उस पर कभी नहीं था और न है और न हो ही सकता है, क्योंकि उसके हृदय में सविता के प्रति प्यार और बच्ची के प्रति ममता था

गयी थी।

उसकी तीन-साढ़े तीन माह की बच्ची एकमात्र सखीचन्द के प्यार की निशानी इस समय सो रही थी। पास ही एक कुर्सी पर बैठी सविता एक पुस्तक पढ़ने में लीन थी। कुछ देर बाद उसका मन किताब पढ़ने में नहीं लगा और वह बीती बातों पर विचार करने लगी—अब तक तो सखीचन्द को बेधड़क आ जाना चाहिए था। दो माह बीत गए। अब क्या किया जाए? यदि उसका पता लगाने की चेष्टा खुलेआम करेगी तो मां ताड़ना दे सकती है, हंसी उड़ा सकती है कि एक गंवार के साथ भागी भी तो वह अब छोड़ गया। भौंरा तो कभी किसी फूल का हुआ है? कभी इस डाल, कभी उस डाल! पंछी डाल का, ऊंट रेगिस्तान का और आदमी बहुरंग का!!!

सविता यही सब सोच रही थी कि श्रीमती स्वरूपा देवी ने उसके कमरे में प्रवेश किया। उसको देखते ही सविता उठकर खड़ी हो गयी। कहा—"आओ, मां।"

श्रीमती स्वरूपा देवी आगे बढ़कर एक कुर्सी पर बैठ गयी। उसने बच्ची की ओर देखकर पूछा—"मुन्नी सो रही है क्या?"

"जी!" सविता ने कहा और पुस्तक के पन्ने बन्द कर दिये।

"सविता!" श्रीमती स्वरूपा देवी ने उसकी ओर देखकर कहा—"यहां मन तो लग रहा है न?"

"जी! ..." ऐसे कहा जैसे वह सोते से जगी हो, परन्तु तत्क्षण ही वह सम्भल गयी और जवाब दिया—"भला मन क्यों नहीं लगेगा मां? आप हैं, पिताजी हैं, सावित्री है, यह क्या मन बहलाने के लिए कम है?"

"शायद सखीचन्द ..." अटक गयी उसकी वाणी अर्थात् वह पूरी बात कह नहीं सकी। डर गयी कि इस वाक्य का अर्थ कहीं

सविता ने कुछ और लगाया तो मामला बढ़ सकता है। वह आयी तो थी अपने ही किसी काम से और उसकी भूमिका में यह सब व्यर्थ ही पूछकर वातावरण को विषाक्त बना देगी तो काम की बातें धरी रह सकती हैं।

"नहीं, मां ! ऐसा नहीं हो सकता।" सविता ने अर्थ या अनर्थ कुछ भी नहीं सोचा। उसने सीधा-सा जवाब दिया—"यदि आप लोग नहीं रहती तो मैं ऊब कर प्राण त्याग देती, अब तक। फिर उनकी याद……! यह बच्ची तो है न मेरे पास।"

"यह तो ठीक है, परन्तु……"

बीच से ही बात काट कर उसने जवाब दिया—"नही, मां ! मैं खुश हूं, सुखी हूं !! मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं है, फिक्र नहीं है, गम नहीं है !!! आप लोगों की कृपा बनी रहे, यही मेरे लिए काफी है।"

श्रीमती स्वरूपा देवी ने सविता के चेहरे की ओर गौर से देखा और उसका भाव समझ कर कहने लगी—"मैंने वैसे ही पूछा था कि अभी तक सखीचन्द आया नहीं !"

क्षण भर के लिए सविता संकोच में पड़ गयी। यदि वह इसका जवाब नहीं देती है तो मां यह सोच सकती है कि सविता को भी यह विश्वास हो गया है कि सखीचन्द अब लौटकर यहां नहीं आ सकता। यह प्रथम बार था जब श्रीमती स्वरूपादेवी सविता के साथ सखीचन्द के विषय में बातचीत कर रही थी। दो महीने के अन्दर इस विषय पर मां से कभी भी उसकी बात नहीं हुई है। हां, सावित्री से तो हमेशा ही उसकी बातें होती रहती थीं जो सविता को अच्छा प्रतीत होता था, भला लगता था !! सविता ने सोच-समझकर जवाब दिया—"आयेंगे मां। अभी कितने दिन बीते हैं ? पुरुष हैं, कहीं घूमने निकल गए होंगे। उनके प्रति निराशा की

कोई बात नहीं है। उन पर मुझको पूर्ण विश्वास है।"

"तब भी…!"

"जब तक यह बच्ची मेरे पास है, मैं उनके बारे में नहीं सोच सकती।" सविता ने कहा—"इसके लिए, ममता के टुकड़े के लिए उनको आना ही होगा। वे कहीं भी होंगे, इसकी याद आते ही वे दौड़े हुए चले आयेंगे।"

"सविता! तुम तो एक किनारे लग गयी हो और अपने-आप में पूर्ण सन्तुष्ट, सुखी एवं खुशी हो।" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा, "लेकिन सावित्री का क्या होगा, कभी यह भी सोचा है?"

"क्यों माँ?" सविता को अचरज हुआ। उसने सोचा—यह बात भी ठीक ही हो सकती है। सावित्री ने अभी तक शादी क्यों नहीं की? माताजी क्यों मौन हैं? पिताजी ने भी इस विषय में कभी बात नहीं की। यह सब क्या गोरखधन्धा है? कहीं उस पर ही तो इसका दोष नहीं मढ़ा जा रहा है कि सविता के भागने के कारण सावित्री की कहीं शादी ही नहीं हो रही है? श्रीमती स्वरूपादेवी के स्वभाव से सविता परिचित थी। यदि इस बात में कुछ तथ्य भी नहीं होगा, तो भी उन पर लाञ्छन लगाया जा सकता है ताकि सविता पछताए, अफसोस करे!!

"वह शादी करना नहीं चाहती।" तभी श्रीमती स्वरूपा देवी ने कहा।

"सावित्री शादी करना नहीं चाहती?" सविता का मन आश्वस्त हुआ। उसने जो सोचा था, वह गलत निकला। कहीं उस पर ऐसा दोष लगाया जाता तो उसकी हालत बेहाल हो जाती और शायद वह अपने पिता के पास ठहरने में अपमान भी समझ सकती थी। सावित्री का शादी करने से इन्कार कर देना, वह दोष-मुक्त हो गई थी। उसका शादी नहीं करना तो सावित्री

का दोष है। कोई युवक इस कारण तो नहीं इन्कार कर रहा था कि कहीं मंगनी के बाद यह भी न भाग जाए। उसने पूछा—"ऐसा क्यों मां ?"

श्रीमती स्वरूपा देवी ने पहले सोती हुई बच्ची की ओर देखा, तत्पश्चात सविता की ओर देखकर कहने लगी—"सखीचंद की सुन्दरता का भूत अभी तक उसके सिर से नहीं उतर सका है।"

"क्या कहती है, वह ?"

"कहती है शादी होगी तो सखीचंद के साथ, वर्ना वह जीवन भर कुंवारी ही रहकर जिन्दगी गुजार देगी।" मां ने कहा।

"यह तो उसकी जिद हो सकती है, मां।" सविता ने कहा—"एक तो मैंने गलती की जो रह-रहकर दिल कचोटता रहता है और सब-कुछ जानते हुए भी सावित्री मेरी तरह ही गलती करने जा रही है। मां, आपने उसको समझाया नहीं ?"

"मैं तो समझाते-समझाते थक गई हूं, सविता।" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"जिस दिन तुम आई थी उस दिन तो मैं हर तरह से समझाकर हार गई। इसके पिताजी ने ही ऐसा करने को कहा था, मगर वह लड़की एकदम मानती ही नहीं। इसीलिए मैं तुम्हारे पास आई हूं कि तुम ही उसको समझाओ कि वह नादानी छोड़कर शान्त मन से शादी कर ले।"

सावित्री के बारे में सविता को सब-कुछ पता चल गया था। वह जानती थी कि सावित्री हमेशा उदास रहती है। उसकी चंचलता समाप्त हो गई है। वह अपना अधिकतर समय कमरे में ही गंवाती है। बिना मतलब वह किसी से भी बात नहीं करती। अपने मन से किसी नौकर या नौकरानी से वह पानी तक नहीं मांगती, कमरा साफ करने को नहीं कहती। जब नौकरानी पूछती है कि छोटी मालकिन खाना ले आऊं, तब वह केवल सिर हिलाकर

हां कह देती है। जरूरत पड़ने पर वह गिलास लेकर पानी के लिए भी चली जाती है। लेकिन बिना टोके किसी से कोई बात नहीं करती। मगर सविता को यह एकदम ही पता नहीं था कि सावित्री के दिल और दिमाग पर सखीचंद छाया हुआ है, जो वह पहले छाया था, सखीचंद। जिसके साथ सविता भागी थी। सविता, सावित्री के दृढ़ प्यार पर प्रसन्न थी। उसने यह भी सोचा कि अधिकतर अमीर घराने की लड़कियाँ वासना के लिए ही किसी युवक को प्यार करती है, मगर सावित्री का प्यार सच्चा है, सावित्री का प्रेम स्वच्छ है, निष्कलंक है! इसी को प्यार कहा जाना चाहिए। सखीचंद के यहां से काम छोड़ने के बाद तो सावित्री एक दिन भी नहीं मिल पाई थी। मगर दूर रहते हुए भी वह प्यार की अंतिम सीढ़ी पर चढ़ चुकी थी। सविता ने पूछा—"उसकी शादी कहीं ठीक हो गई है?"

"शादी तो उसकी तय ठीक ही है।" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"जिस बैरिस्टर लड़के के साथ तुम्हारी मंगनी हुई थी, उसी के साथ। तुम्हारे बिना तो पहले नाम ही नहीं ले रहे थे, मगर लड़के ने जिद की कि सविता ने शादी नहीं की तो न सही, सावित्री के साथ ही उसकी शादी कर दी जाये।"

"तब तो अति उत्तम है।" सविता ने कहा—"तब तो उसको तुरन्त शादी कर लेनी चाहिए।"

"तुम्हारे विचार से तो यह अति उत्तम है।" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"मगर सावित्री मान जाय तब न? मैं तुमसे मदद मांगने आई हूं, हालांकि मुझको विश्वास है कि तुम्हारा समझाना शायद व्यर्थ जायगा। तब भी मेरी इच्छा है कि तुम अपनी ओर से उसको समझाओ। शायद अब वह तुम्हारा कहना मान जाय। वह इसलिए कि तुम सखीचंद को अपना चुकी हो और तुम्हारे सबक

या तुम्हारी बातों पर अवश्य ही विश्वास करेगी। उसके पिता इस बात से बहुत दुःखी रहते हैं। कहते हैं—लड़कियों ने नाक तो कटवा ही दी। अब वह कहना भी नहीं मानती। वे परेशान हो गए हैं कि लड़के वाले को क्या उचित जवाब दिया जाय। किसी तरह वह मानती ही नहीं।"

नाक कटने की बात पर सविता का सिर झुक गया। उसको कुछ देर के लिए अफसोस हुआ कि उसने आवेश में कुछ वैसा काम कर दिया है, जिसको नहीं करना चाहिए था। उसको अपने पिता से साफ-साफ कह देना चाहिए था कि वह बैरिस्टर युवक के साथ विवाह नहीं कर सकती, यदि शादी करेगी तो अपने किसी दोस्त के साथ, जिसको वह चाहती हो, पसंद करती हो चाहे वह गरीब हो या अमीर। और ऐसे समय में प्रायः होना ही यही है। समय से पहले ऐसी बातों के लिए कभी पछतावा नहीं होता, बाद में काफी अफसोस किया जाता है, जो शुमकर नहीं होता। इसीलिए तो कहा भी गया है कि 'आगे सोचे पंडित और पीछे सोचे मूर्ख'। सविता ने सिर झुकाए हुए ही कहा—"मैं पूरी कोशिश करूंगी कि सावित्री शादी करने को राजी हो जाय। और अब तो उसको शादी कर ही लेनी चाहिए। उनकी तो शादी हो ही चुकी। उनके सहारे जीवन को तपाना मूर्खता समझा जाएगा।"

श्रीमती स्वरूपादेवी ने काम की बातें कर ली थीं। उसको खुशी थी कि सविता उसकी बात मानकर सावित्री को समझाने को राजी हो गई है। उसको आशा थी कि सविता के समझाने-बुझाने पर सावित्री का दिमाग कुछ ठण्डा होगा और वह शादी करने पर राजी हो जा सकती है। अब वह अपने दामाद के रूप में बैरिस्टर को पा सकेगी। शादी···बैरिस्टर! सावित्री सुख से रहेगी, शान के साथ रहेगी। वह बहुत ज्यादा खुश हुई और खुशी के आह्लाद

को नहीं छिपा सकने के कारण उसने पूछा—"बच्ची की शक्ल तो सखीचंद के जैसी ही है ?"

"जी !" सविता ने कहा और मन-ही-मन मुस्कराई। उसको खुशी थी कि मां ने भी उनकी प्रशंसा की--"लगता तो ऐसा ही है।"

"अक्सर ऐसा कम ही होता है।" श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा, "मेरी सावित्री को देखो, वह मेरे ही ऊपर गई है। असल में लड़कों का पिता पर जाना स्वाभाविक हो जाता है। मगर कभी-कभी लड़कियां भी पिता पर ही चली जाती हैं। यह शुभ लक्षण ही माना जाता है।"

श्रीमती स्वरूपादेवी ने सखीचंद के लिए अच्छे शब्दों का प्रयोग किया था, इस कारण सविता काफी प्रसन्न थी। वह अन्दर-ही-अन्दर मुस्करा रही थी। यदि उस समय उसकी मां न होकर कोई हमजोली होती तो वह सखीचंद की तारीफ के पुल बांध देती। उसने इस तरह उसको प्यार दिया। वह इस तरह उसको मानते थे। घर के कामों में भी वे काफी सहायता करते थे। बच्ची को तो दिन-रात अपने से लगाये रहते थे। काम करते समय भी इसको दरवाजे पर बैठना पड़ता था, लेकिन अपनी मां श्रीमती स्वरूपा देवी ने उससे कुछ नहीं कहा। बल्कि जो पुस्तक वह पहले पढ़ रही थी, उसके पन्ने खोलकर कुछ पढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

सविता को कुछ बोलने न देख श्रीमती स्वरूपादेवी ने कहा—"सविता !"

"जी।"

"तब मैं जाऊं न ?"

"जी हां, आप जाइये।" सविता ने परिस्थिति समझकर कहा,

"मैं सावित्री को अभी बुलवाती हूँ और अच्छी तरह समझाकर राजी करने की चेष्टा करूँगी। मुझे खुशी होगी कि आपके कहने पर मैं ऐसा करने में सफल हो सकूं। भगवान करे वह खुश रहे।" और सविता ने एक लंबी सांस ली।

श्रीमती स्वरूपा देवी ने उठते हुए कहा—"पूरी तरह ध्यान रखना।"

"जी, अच्छा।"

और श्रीमती स्वरूपादेवी ने सोयी हुई बच्ची को प्यार किया और वहां से चली गई।

मां के चले जाने के बाद सविता ने सोचा कि वह सावित्री को किससे बुलवाये। वह स्वयं तो जा नहीं सकती है, अभी। क्योंकि मुन्नी सो रही है और सोते हुए में लेकर जाना ठीक नहीं। वह यह सोच ही रही थी कि सामने से नौकरानी जाती दीख पड़ी। उसने उसको पुकारा और उसके पास आने पर बोली—"सावित्री से कहना कि दीदी बुला रही है। और देखो, जहां तक जल्दी हो सके उसको भेजना।"

इतना सुनने के बाद नौकरानी वहां से चली गयी।

सविता अकेली रह गयी थी। नौकरनी चली गयी थी। मां भी वहां से चली गयी थी। बच्ची भी नींद में सो रही थी, जिसको वह प्यार भी नहीं कर सकती थी। मन बहलाने के लिये उसके हाथ में एक पुस्तक थी, लेकिन पढ़ने में उसका मन ही नहीं लग रहा था। उसने सोचा--सावित्री का लखीचन्द के लिये तपस्या करना उचित नहीं। उसके लिये जिद पर अड़े रहना ठीक नहीं!! वह समय ही दूसरा था जब दोनों बहनें एक साथ ही उसकी सुन्दरता पर लट्टू थीं। फिदा हो गयी थीं!! उस वक्त उनको इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं था कि वह सुन्दर और गंवार नौकर

सविता का जीवन-साथी बन सकेगा और एक साल के भीतर ही वह मां भी बन जायेगी। किन्तु क्या यह सम्भव हो सकता है कि दोनों बहनें सखीचन्द को पति मानकर एक साथ रहें? वह क्या दोनों को एक साथ प्यार कर सकता है? शायद उनके लिये ऐसा कर सकना असम्भव नहीं, क्योंकि नाटक के रूप में पुरुष एक ही साथ चार-पांच औरतों से सम्बन्ध स्थापित कर अपना काम निकाल सकता है, इस कारण कि पुरुष का दिल स्थायित्व नहीं चाहता। वह भ्रमर करना चाहता है, परिवर्तन चाहता है। और कुछ जल्दी-जल्दी चाहता है। रह गयी औरतें। तो औरतें भोग कम चाहती हैं और प्यार अधिक। चाहे वह प्यार पति का हो या किसी प्रेमी का। जब वह कुंवारी रहती है, नई जवानी भाभा होन होता है तब भले ही उनके पास प्यार की मात्रा कुछ कम होती है वासना अधिक होती है। मगर वासना की तह में प्यार भी सिमटा रहता है। और जब भोग की तृप्ति समाप्त हो जाती है तब प्यार का स्थान प्रथम आ जाता है। प्रेम उभरकर सामने आ जाता है। ऐसी स्थिति में कोई औरत यह नहीं चाहती कि उसका पति या प्रेमी किसी अन्य औरत से लगाव रखे, सम्बन्ध रखे!!

लेकिन सावित्री की यह कैसी जिद? वह तो चाहती है कि सखीचन्द ही उसका पति हो और वह उसी के साथ रहे। जीवन भर रहे। कभी अलग न हो सके!! तभी तो वह अपने शरीर को घुला रही है, आत्मा को तपा रही है!! क्या सावित्री का सौत बनकर रहना, वह बरदास्त कर सकेगी? उसका हृदय इतना विशाल हो सकता है? अपनी बहन को अपने पति की दूसरी पत्नी मानकर सुख से रह सकती है? कहीं उसका हृदय डोल गया, तब? तब तो एक बखेड़ा उत्पन्न हो सकता है।···खैर, सावित्री आ जाय तो उसके साथ बातें हों। जैसा होगा, बाद में देखा जायगा।

"दीदी !" और उसी वक्त सावित्री ने उसके कमरे में प्रवेश किया।

"आओ सावित्री !" सविता ने सावित्री के चेहरे को गौर से देखा—वह काफी उदास थी। उसके होठों की ओर देखा—वह कुछ सूखे-से लगे थे। उसने गालों को देखा—ऊपर की हड्डियां उभर आयी थीं। आंखों की ओर देखा—वह कुछ अजीब-सी लग रही थीं। लौट कर जब वह यहा आयी थी, उस दिन तो वह सावित्री को देखने पर पहचान नहीं सकी थी। वह तो काफी दुबली-पतली हो गई थी अब कुछ-कुछ अच्छी हो गई है, तब भी वह काफी उदास है। कुछ सम्भलने का कारण यह हो कि सविता के आने पर ढाढस बंधा हो और सखीचन्द से मिलने की आशा हो। उसने कहा—,,मैंने तुमको एक जरूरी काम से बुलाया है।"

"जरूरी काम से ?" सावित्री को अचरज भी हुआ। लेकिन उसने सोचा—अचरज की बात क्या हो सकती है ? मां ने इससे कहा होगा कि सावित्री शादी नहीं करती, सखीचन्द को ही अपना पति मानती है। तो दीदी उसको समझायेगी ? क्या वह यही कहेगी कि सखीचन्द के साथ उसकी शादी हो गयी है तो अब उसके साथ कैसे शादी हो सकती है ? क्या एक साल पहले की सविता आज एकदम से इतना बदल जायेगी ?···नहीं। सविता ऐसा खुद नहीं कह सकती। यदि ऐसा कहेगी तो मा की आवाज का प्रतिरूप होगा। यह वही सविता है कि अकेली सखीचन्द के पास नहीं जाती थी। हरदम कहती थी कि हम दोनों बहनें एक साथ ही इसके साथ शादी करके रहेंगी।

"हां !" सविता ने उसकी ओर देखकर कहा—"एक तरह से उसको जरूरी ही समझो और तुम्हारे जीवन का भविष्य भी।"

"जीवन का भविष्य···?"

"हाँ !"

"अपने भविष्य के लिए तो मैंने अपना रास्ता चुन लिया है।" सावित्री ने कुछ दृढ़ता के साथ कहा।

सावित्री की ओर उसने देखा तो सविता को लगा, जैसे सावित्री जो कुछ कह रही है, वह उसका दृढ़ संकल्प है, अटल निश्चय है। उस निश्चय से वह तिल भर भी नहीं हट सकती, सुई की नोंक के बराबर भी नहीं। अतः सविता ने सोचा था, आशा थी कि उसको समझा-बुझाकर शादी करने पर उसको राजी कर लेगी, तो लगता है रेत का महल खड़ा नहीं हो सकता। जितना आसान और सरल उसने समझा था, उतना आसान और सरल वह नहीं था। यह सोचकर भी उसने कहा—"यह बात तो ठीक है सावित्री कि तुमने जो भी अन्तिम निर्णय किया होगा, अपने जीवन के बारे में, वह खूब अच्छी तरह सोच-समझकर एवं सुख में लगा हुआ ही किया होगा। फिर भी किसी एक बात पर अड़े रहना लाभदायक नहीं।"

"एक बात पर अड़े रहना लाभदायक नहीं हो सकता ?"

"होता है, लेकिन कम।" सविता ने कहा—"मंजिल तक पहुँचने के लिए अनेकों रास्ते होते हैं। यदि एक रास्ता कठिन हो सकता है तो दूसरा कुछ और आसान हो सकता है। लेकिन एक ही पर चलना ठीक नहीं।"

"जिस बात पर मैं, मान लिया जाय कि अड़ी हूँ।" सावित्री भी कम चालाक न थी। वह समझ गयी थी कि दीदी किस बात की चर्चा कर रही है। लेकिन वह उस विषय को स्वयं खोलना नहीं चाहती थी, अतः उसने कहा—"यदि वह रास्ता छोड़कर अन्य रास्ते पकड़ लूँ तो हो सकता है कि हमारा जीना दूभर हो जाय।"

"यह भी तो हो सकता है कि पहले से जीवन सुखी हो जाय।"

सावित्री ने झटपट जवाब दिया—"अगर पहले की भांति जीवन सुखमय हो गया तब तो कुछ सोचना ही नहीं है और न किसी के प्रति कोई शिकायत ही होगी। और यदि ज्यादा दुखमय हुआ तब...?"

सविता को अब कोई जवाब नहीं सूझा। वह चुपचाप पुस्तक के पन्ने पलटने लगी।

"दीदी!" सविता को चुप होते देख सावित्री ने कहा।

सविता ने उसकी ओर देखा।

"तुम जो कुछ कहना चाहती हो, वह मैं कुछ-कुछ समझ रही हूं।" सावित्री ने ही पुनः कहा—"मगर मैं चाहती हूं कि हम दोनों बहनें इस पर खुलकर बातें करें, क्योंकि एक तो मेरे मन का अन्धकार मिट जायगा और मैं तब समझूंगी कि मैं कितने गहरे पानी में थी और दूसरे कि तुम्हारा भी भ्रम साफ हो जायगा। अतः तुम जो भी पूछोगी, मैं उसका सही उत्तर दूंगी।"

"उत्तर?......अच्छा......!" मुस्कुराती हुई सविता ने पूछा—"इस जवानी को तुम योंही मिटा दोगी?"

"इरादा तो ऐसा ही है।" सावित्री ने कहा—"फिर यह जवानी, मस्ती, चंचलता इत्यादि तो एक दिन मिट ही जायगा, यहां तक कि यह शरीर भी, जिसको हम बड़े यत्न से सुरक्षित रखते हैं, एक दिन मिट्टी में मिल जायगा, फिर हमको इसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसे आज न सही, कल ही सही, मिट ही जाना है।"

"यह बात नहीं।" सविता ने उसको समझाने के ख्याल से कहा—"इस धरती पर जन्म लेने का अर्थ यही है कि इस धरती

से कुछ आनन्द प्राप्त किया जाय। यह तो सभी जानते हैं कि एक दिन यहां की सभी वस्तुएं नष्ट हो जायंगी, तो इसका मतलब यह नहीं कि हम सभी हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहें।"

"दीदी! तुम कहना क्या चाहती हो?" सावित्री ने अलसा कर कहा—"तुम्हारी यह भूमिका मुझे अच्छी नहीं लग रही है।"

"हूं!" सविता ने पूछा—"तुम शादी क्यों नहीं कर लेती?"

"यह कोई जरूरी है?"

"जरूरी तो है ही।" सविता ने कहा—"औरत को एक सहारे की जरूरत होती है और सहारा एक पुरुष ही दे सकता है। अतः शादी करना जरूरी है।"

सावित्री समझ रही थी कि अब बात ठीक ढंग से चल रही है, उसने पूछा—"यदि शादी के बाद उस औरत का पति तुरन्त ही। मर जाय, तब क्या करना चाहिए?"

"तुरन्त दूसरी शादी।"

"और दूसरा भी पति मर जाय, तब?" सावित्री ने पूछा।

"यदि उम्र हो तो तीसरी शादी।"

"तब मृत पतियों का प्यार...।"

बीच से ही बात काट कर सविता ने जवाब दिया—"वह तो उनके शरीर के साथ ही चला गया।"

"यह तो ठीक है कि प्यार शरीर के साथ जलकर भस्म हो गया।" सावित्री बोली—"मगर स्मृतियां तो नहीं मिटायी जा सकतीं।"

"स्मृतियों को याद कर तिल-तिलकर जलना आधुनिक युग के विरुद्ध है। तमन्नाओं को मिटाओ, इच्छाओं को जलाओ, हर वस्तु के लिए तरसो, ललचो, यह ठीक नहीं।"

"मैं इस पर विश्वास नहीं करती।" सावित्री ने कहा।

"विश्वास तो तुमको एक दिन करना ही पड़ेगा।" सविता ने

कहा—"आखिर स्मृतियों के बल पर इस लंबी जिन्दगी को कब तक टाला जा सकता है, जबकि परिस्थितियां बाध्य करती हैं कि वह पुरानी यादों को भूल जायं ? क्या ऐसा करना इतना सरल है, जितना कह देना। और जब तपस्या भंग ही हो जाय तो वह तपस्या किस काम की ?"

"तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि किसी वस्तु को पाने के लिए प्रयत्न ही न किया जाय ?"

"नही, मेरे कहने का साराश यह नही है।" सविता ने कहा—"वस्तु को पाने के लिए या अपनी इच्छा के अनुसार काम करना चाहिए। मगर काफी प्रयत्न के बाद यदि इच्छा की पूर्ति न हुई तो अपना रास्ता बदल देना चाहिये, न कि उसी के सहारे बैठा ही रहा जाय।"

इस बार सावित्री खामोश रह गयी, मौन !!

सविता ने समझा, सावित्री वाद-विवाद में हार गई। अतः हिम्मत कर आशा के साथ कहा—"जिस युवक के साथ मेरी मंगनी हुई थी, वह बैरिस्टर है, शिक्षित है, काफी सम्पत्ति वाला है। तुम शादी के बाद यह सब तुरन्त ही भूल जाओगी और बहुत खुश होगी। मैं तो तुमको खुश ही खुश देखना चाहती हूं।"

"उसके साथ शादी के बाद सुखी रहूंगी, लेकिन खुश नहीं रह सकती, मैं ?"

सविता ने सावित्री की ओर देखा, अचरज से।

"इसलिए कि मेरी आत्मा का वह मालिक नहीं होगा, भले ही वह इस नश्वर शरीर का मालिक बन जाय।"

"सब-कुछ एक दिन ठीक हो जायगा।"

"उसके साथ मैं शादी नही करूंगी।"

"क्यों ?" सविता ने पूछा—"उसमें क्या कमी है ?"

"वह किसी शरीफ औरत का पति होने योग्य नहीं है।"

"कुछ सुनूं भी तो ?" सविता ने जिद्द की।

"दीदी ! यह सब न सुन सको तो अच्छा हो।" सावित्री ने कहा।

जो कुछ सविता जानना चाहता थी, वह सावित्री उसको बताना नहीं चाहती थी। इससे उसकी जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी, वह बात जानने को आतुर थी। कौन-सी ऐसी बात थी, जिससे सावित्री शादी करना नहीं चाहती थी। उसका होने वाला पति पढ़ा-लिखा के साथ ही बैरिस्टर भी था और धनी भी, आधुनिक सभ्यता के सभी लक्षण उसमें मौजूद थे, जिससे आज के मनुष्यों को सुख की प्राप्ति होती है। यह एक कृत्रिम विचार है, लोगों का। आधुनिक सभ्यता से आत्मा को कभी सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सकता। हां, लोगों को धोखा देकर, कुछ कृत्रिम सुख का ढोंग दिखलाया जा सकता है कि हम बड़े हैं, पढ़े-लिखे हैं, धनी हैं। तभी सविता ने पूछा—"आखिर कुछ तो कहो……सावित्री ?"

"वह बैरिस्टर एक नारी के सहारे बंधकर रहने वाला युवक नहीं है, दीदी।" सावित्री ने कहा—"जब तुम सखीचंद के साथ एकाएक चली गई थी, तो सोचो, बाहर हमारी कितनी भद्द उड़ी होगी। भले ही हम लोग सोच रहे होंगे कि यह ठीक ही हुआ है। मगर समाज यह सब नहीं सोचता होगा। वह तो यही सोचता होगा कि जज साहब का खानदान गिर गया है। उनकी नाक कट गई। अब ये लोग किसी काम के नहीं रह गए। यह सही है कि यदि किसी गरीब अशिक्षित की लड़की ऐसा की होती तो जाति या समाज उसको अपनी संगति से निकाल बाहर किया होता या समाज के कुछ स्वार्थी लोगों को अच्छा खिलाने-पिलाने का दंड भुगत कर फिर जाति में मिला होता। मगर पिताजी का बड़प्पन और यश के चलते किसी को कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ, लेकिन पीठ-पीछे खूब उड़ी होगी। तब वह युवक फिर इस खानदान में शादी करने पर क्यों तुला हुआ है। क्या उसको इस बात का भय नहीं है

कि बड़ी बहन किसी के साथ भाग गई है तो छोटी भी भाग सकती है फिर भी वह चाहता है कि इस खानदान में शादी हो। इस बात पर कभी तुमने ध्यान दिया है? मेरी समझ के अनुसार तो इसमें कुछ चाल मालूम होती है, मुझे। प्रथम तो यह कि तुम्हारे बदले में वह मेरी अछूती जवानी से खेलना चाहता है। द्वितीय यह कि मेरे साथ शादी होने के बाद कानूनन सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी वही होना चाहता है। यह बात सही है कि मेरे साथ जिस किसी की भी शादी होगी, उसको ये दोनों चीजें मिलेंगी, लेकिन लड़के वाले का इस तरह जिद् करना क्या अर्थ रखता है? उसका चरित्र एकदम भ्रष्ट है, मैंने पता लगाया था। यहाँ कालिज में जिन लड़कियों के साथ उसका सम्बन्ध रहा था, उन्हीं ने यह भी पता चला कि इंगलैंड में भी उसका सम्बन्ध कई अंग्रेज युवतियों से रहा था, यहां तक कि लौटते समय एक युवती को वह अपने साथ ही लाया था, मगर पिता की कड़ाई और समाज के भय से उसने एक माह बाद ही उसको वापस भेज दिया।"

सविता चुपचाप यह सब सुन रही थी।

और सावित्री कह रही थी—"तुम्हारी किस्मत अच्छी थी, जो तुमसे उसकी शादी नहीं हुई, नहीं तो नाम को तुम बैरिस्टर की पत्नी कहलाती। वैसे तुम जिन्दगी भर सुखी नहीं रह पातीं। कौन किसी को भूखे रखता है? गरीब हो या अमीर, सभी पूड़ी या सत्तू खाते ही हैं। कोई भूखों नही मरता, मगर प्यार नाम की चीज तुमको नहीं मिल पाती। पति के प्यार के लिए तुमको जीवन भर इन्तजार ही करना पड़ता। अच्छा हुआ जो तुमको भगवान ने गरीब मेहनती, मगर कलाकार पति दिया। तुम एक रात भूखे रह कर भी सुख से रात काट सकती हो। तुम्हारी आत्मा पूर्णतया सन्तुष्ट है।"

सविता अब भी चुपचाप सब-कुछ सुन रही थी।

"दीदी! यदि मेरी शादी होगी तो सखीचंद के साथ ही, वर्ना

जीवन भर कुंवारी ही रहूँगी।" सावित्री कहने लगी—"अगले जन्म की गाथा पर मैं विश्वास तो नहीं करती, किन्तु इस जीवन में मैं अपनी जवानी, मस्ती और इस नाजुक शरीर को अछूता रखूंगी ताकि जब भी हो, सतीशचंद्र ही उपभोग कर सके।"

"ऐसी बेवकूफी मत कर, सावित्री।"

"यह बेवकूफी नहीं, दीदी।" सावित्री ने कहा—'यह बना-वटी भी नहीं। हृदय की पुकार है यह, जो मैं यह कह रही हूं।"

सविता को दृढ़ विश्वास हो गया कि सावित्री जो कुछ कह रही है, सत्य ही कह रही है। अतः मामूली बात में इसको झुकाना कठिन-सा होगा। उसने कहा—"एक तो मैं गलती करने का परि-णाम भुगत रही हूं और दूसरे तुम भी एक ऐसी गलती पर जा रही हो, जो उचित नहीं कहा जा सकता। जीवन का आनन्द बार-बार नहीं मिलता, सावित्री। अतः इस जीवन को संभाल कर तो रखना ही चाहिए। साथ ही इसको बिताना भी चाहिए, जिससे कि सुख मिले, आनन्द मिले! क्योंकि इस संसार में आने की कुछ तो सार्थ-कता मिल सके।"

"दीदी, यह आवाज तुम्हारे हृदय की आवाज नहीं लगती।" सावित्री ने कहा—"मुझको समझाने के लिए तुम जान बूझकर झूठ बोल रही हो। तुम कितनी सुखी हो, तुम्हारा हृदय ही बता सकता है।"

सविता उदास होती जा रही थी। अतः उसने पूछा—"उनके साथ रहकर क्या तुम सुखी रह सकोगी?"

"अवश्य दीदी!" सावित्री ने तुरन्त जवाब दिया—"उनके साथ रहकर मैं सुखी तो रहूंगी ही, साथ ही खुशी भी रहूंगी, लेकिन मुझको डर है कि मेरी-उनकी इस नई शादी से शायद तुमको खुशी न हो। बहनें होते हुए भी हम एक-दूसरे की सौत समझी जायेंगी। समझी क्या जायेंगी, कही जा सकती हैं। विवाहिता पत्नी होने के

नाते तुम यह नहीं चाहोगी कि वे मेरे साथ शादी करें या मैं उनके साथ विवाह-सूत्र मे बंधू ।"

सविता इस बार भी चुप रह गई, उसने कुछ नहीं कहा। चुपचाप सावित्री की बात सुनती रही।

सावित्री ने एक बार बच्ची को गौर से देखा और कहने लगी, "किन्तु दीदी, मैं उस सौत की तरह नही रहूँगी, जो आजकल तुम सौतों को देखती हो या उनके बारे में सुनती हो, मेरे सौतपन में एक आदर्श होगा, उदाहरण होगा! मैं तुम्हारी दुश्मन नही, चेरी बन कर रहूँगी। यदि तुम पलग पर सोओगी तो देख लेना दीदी, तुम्हारी सौत यह सावित्री जमीन पर बोरा बिछाकर सोवेगी।"

"सावित्री···!" और सविता की आंखों में पानी भर आया।

"दीदी! असल में या सही माने में मैं या तुम सौत हो ही नही सकती।" सावित्री कहने लगी—"मुझे उनके साथ भोग की जरूरत नहीं। मैं यह कभी नहीं चाहूंगी कि वे मेरे साथ अकेले ही बैठकर प्रेम की बातें करें। मेरे हृदय की केवल पुकार यही है कि मैं उनको देखती रहूं। मेरे हृदय का एक कोना यह मान बैठा है कि वे हमारे इष्टदेव हैं! पति हैं!! सब-कुछ है!!!"

"सावित्री···! बस कर ······।" और सविता ने अपने दोनों हाथों से अपने कान बन्द कर लिए।

सावित्री ने सविता का हाथ पकड़ लिया और भाव-विह्वल होकर कहने लगी—"दीदी! मैं यह सब तुमसे कहने ही वाली थी, पूछने ही वाली थी। तुम तैयार हो जाओ, बस सब ठीक है।" और उसने दीदी की ओर देखा।

सविता चुप थी। उसका सिर झुका हुआ था। उसने कुछ कहा नही।

"दीदी···! कुछ जवाब दो···!" सावित्री ने कहा—"हां या नहीं?"

सविता मौन थी।

"दीदी...! छोटी बहन की इस अभिलाषा को मत ठुकराओ, नहीं तो...प्रतिज्ञा के अनुसार मेरा जीवन हमेशा के लिए नष्ट हो जायेगा।"

सविता ने सिर उठाकर सावित्री की ओर देखा।

"मुझे अपने चरणों में ही पड़ी रहने दो दीदी।" सावित्री ने कहा।

सविता ने उसकी ओर देखा। सविता की आंखें भर आयी थीं।

सावित्री ने गीले कण्ठ से कहा— "दीदी... !"

और सविता ने सावित्री को अपनी गोद में कस लिया। दोनों बहनें आज एक हो गईं, जिस तरह कुछ दिन पहले थी।

●

शाम को!

जब गौरी बाबू कचहरी से लौटे तो काफी उदास थे। उनका नित्य का यह काम था कि वे जब भी कचहरी से आते थे तो बिना पूछे या मांगे एक कप चाय पीते थे। यह कोई खास बंधा हुआ नहीं था कि वे नौकर के हाथ की या श्रीमती स्वरूपादेवी के हाथ का ही पीते हों। किसी के भी हाथ की क्यों न हो,वह एक कप चाय जरूर पीते थे।

चाय श्रीमती स्वरूपा देवी लेकर आयी थी। उसके आते ही उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा और देखकर कहा कि उनकी तबीयत चाय पीने की नहीं है।

"क्यों?" श्रीमती स्वरूपा देवी को अचरज हुआ।

इस क्यों के जवाब में गौरी बाबू ने अपनी पत्नी की ओर देखा था और उनकी पत्नी से यह बात छिपी नहीं रही कि गौरी बाबू की आंखों में नीर भर आया है। उनकी आंखें डबडबा आयी हैं। वह चाहती थी कि वह इनकी उदासी का कारण पूछे। मगर

उसको साहस नहीं हुआ और बिना कुछ जाने ही श्रीमती स्वरूपा देवी वहां से चली आयी थी।

घर के सभी सदस्यों को ज्ञात हो गया कि जज साहब आज बहुत ज्यादा उदास हैं। देखते ही देखते सभी उनके पास आ धमके। सभी के चेहरे पर प्रश्न के चिन्ह थे। सभी एक-दूसरे की ओर रह-रहकर ताक लेते थे कि बात क्या है ? लेकिन किसी को जवाब नहीं मिला।

सभी के बिन पूछे प्रश्नों का उत्तर गौरी बाबू ने अपनी आँखों में पानी भर कर दिया—"आज मैं एक विलक्षण केस का फैसला सुनाकर आया हूँ। केस ही कुछ इस तरह का था कि इस्तीफा भी दे आया हूँ। अतः अब इस बंगले को छोड़ना होगा।"

किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया और न कुछ कहा ही। तुरन्त जज साहब ने ही कहना शुरू किया—"एक युवक ने अपने ससुर पर केस किया था कि उसकी पत्नी को उसका बाप अनैतिक कार्य करने के लिए दबाव डालता है तथा उसके पास जो कुछ गहने थे, सभी को बेचकर खा गया।" इतना कहने के बाद वे चुप हो गये।

श्रीमती स्वरूपा देवी गौरी बाबू की ओर ध्यान से देखते हुए यह सब सुन रही थी। सावित्री कभी अपने पिता की ओर देखती कभी सविता की ओर। सविता कभी अपने पिता को देखती और कभी अपनी बच्ची की ओर, जो उसकी गोद में आराम से लेटी हुई थी। कुछ नौकर थे, जो बाहर बरामदे में बैठे या खड़े-खड़े यह कहानी सुन रहे थे।

दो मिनट बाद गौरी बाबू ने सविता की ओर ताका और कहने लगे—"दोनों पति-पत्नी का विवाह प्रेम के कारण ही हुआ था। दोनों ने कोर्ट में शादी की थी। लड़की के पिता ने शादी के समय काफी नाराजगी प्रकट की थी, किन्तु कुछ दिनों के बाद लड़की का बाप अपनी बेटी के घर गया और दामाद से कहा कि अब तो

जो होना था, वह हो चुका। अब बेटी को विदा कीजिए ताकि यह रिश्ता कायम रहे। कहीं हिन और हत्या भी छूटती है! इतना कहने के बाद दमाद ने अपने ससुर पर विश्वास किया और पत्नी को उसके बाप के साथ विदा कर दिया। उसके विदा के थोड़े दिनों बाद ही एक अज्ञात व्यक्ति द्वारा दामाद को ज्ञात हुआ कि उसकी पत्नी अपने पिता के घर काफी दुःखी और तकलीफ में रह रही है। अतः दामाद दूसरे दिन ही अपनी ससुराल पहुंचा। वहां एक दिन में ही सारा किस्सा दामाद को मालूम हो गया, हालांकि उसको इस बीच अपनी पत्नी से मिलने नहीं दिया गया। गांव के वातावरण से उसको सब-कुछ पता चल गया। गांव के कुछ शरीफ लोगों से दामाद को यह भी पता चला कि उसकी पत्नी को किसी के हाथों बेचने की तैयारी की जा रही है। एक ग्राहक अपनी पत्नी बनाने के लिए इस लड़की को खरीदने पर तैयार भी हो गया है।

सभी सुननेवाले आदमियों के चेहरे पर आश्चर्य और दुःख के निशान थे। गोरी बाबू ने बारी-बारी से सभी की ओर देखा।

"आगे क्या हुआ पिताजी?" सावित्री ने पूछा।

जज साहब ने सावित्री की ओर गौर से देखा और कहने लगे—"युवक जवान था, तन्दुरुस्त था। अपने गुस्से को नहीं रोक सका और उसने अपने ससुर से कहा कि वह कल सवेरे ही अपनी पत्नी को लिवा ले जाएगा। पहले तो ससुर ने शांतिपूर्वक ही कहा कि अभी रहने दे। दो-तीन माह बाद वह विदा कर देगा। काफी दिनों बाद तो वह इस घर में आयी है। अभी तो कई सहेलियां ऐसी हैं, जिनसे वह मिली भी नहीं है। लेकिन दामाद को सारी बातें मालूम हो चुकी थीं। वह अच्छी तरह जानता था कि उसका ससुर इस बारे में एकदम सफेद झूठ बोल रहा है। वह कब माननेवाला था। उसने जिद की कि वह कल सवेरे ही लिवाकर ले जायेगा। वहां घर में काफी तकलीफ है। किसी भी हालत में वह मान नहीं सकता।

नतीजा यह हुआ कि जब दामाद नित्य-क्रिया से निपटने के लिए शाम को गांव से बाहर गया हुआ था तो कुछ लोगों ने, जिनको उसके ससुर से किसी प्रकार का स्वार्थ था, उसको पीटा, बुरी तरह पीटा। लेकिन दामाद वहां से जान बचाकर भाग सकने में समर्थ हुआ और थाना पहुंचने के बाद यह केस चला।" गौरी बाबू यह सब कह तो रहे थे, परन्तु वे इस वक्त काफी गम्भीर थे।

शाम होने को आ रही थी। दिन अभी भी शेष था। बत्ती अभी जली भी नहीं थी।

सावित्री कौतूहल से अपने पिता की ओर देख रही थी। सविता सब-कुछ सुन रही थी, चुपचाप। इस बार श्रीमती स्वरूपा देवी से नहीं रहा गया। उन्होंने पूछा—"लड़की ने क्या बयान दिया था?"

"लड़की ने साफ-साफ कह दिया कि अपने पति के घर से लाने के बाद उसके पिता ने दस दिनों तक उसको अच्छी तरह रखा। मान-सम्मान के साथ रखा।" गौरी बाबू ने कहा—"मगर दस दिनों बाद एक दिन एक ऐसे आदमी को रात को उसके कमरे में भेज दिया जो शराब के नशे में धुत था। बड़ी मुश्किल से उस दिन वह अपना अस्तित्व बचा सकी थी। पहले वह शराबी को समझाती रही। नशे की हालत में शराबी ने उससे कह दिया कि तेरे बाप को उसने इस एक रात के लिए बीस रुपये दिए हैं, तब वह आया है, खैरात या हराम में नहीं। नहीं मानने पर शराबी को ढकेल दिया था और उसके बेहोश होते ही वह कमरे से निकल गई थी। दूसरे दिन बाप से उसने पूछा भी कि यह सब क्या हो रहा है। तब उसके पिता ने साफ-साफ कह दिया कि वह भागकर कहीं नहीं जा सकती, अपने पति के पास भी वह कभी नहीं जा सकती। उसको इसी तरह के अनैतिक कार्य हर रात करने होंगे। तूने जो मेरे साथ गद्दारी की है, उसका फल यही सब भुगतना पड़ेगा। इससे तुमको कोई नहीं बचा सकता। उस दिन से लड़की सचेत रहने लगी। इसके लिए

उसको कभी-कभी बुरी तरह पीटा भी गया था।

सभी चुपचाप सुन रहे थे।

और गोरी बाबू कह रहे थे—"गांव के एक गवाह से पता चला कि इस लड़की को एक विधुरपुरुष के हाथों एक हजार रुपये में बेचा जा रहा था। सब-कुछ पक्का हो गया था। यहां तक कि उसका पिता ढाई सौ रुपया बयाना भी ले चुका था।

"बड़ा कृतघ्न पिता था, वह!" सावित्री से न रहा गया।

"एक बाप को ऐसा नहीं होना चाहिए।" गोरीबाबू ने कहा—"जब लड़की स्वेच्छा से अपने पति को वर चुकी है, तब पिता को क्या एतराज—आज का आधुनिक युग यही कह रहा है। लड़की के कार्यों से पिता को थोड़ी देर के लिए कष्ट तो होता ही है। लेकिन अक्सर शांत हो जाना पड़ता है। मगर ऐसा नहीं कि बदले की भावना के रूप में वह अनैतिक कर्म करवाये और उसके साथ जोर-जबरदस्ती करे। उसे पीटे तथा बाद में बेचने पर आमादा हो जाय, मानव को मानव द्वारा बेचना ही जघन्य कर्म माना गया है।"

"बाप को तो सजा हो गई होगी?"

"अपराध जब साबित हो जाता है, तब सजा मिलती ही है।" गोरीबाबू ने कहा—"कानून के अन्दर ऐसे अपराधों की सजा ज्यादा से ज्यादा सात साल की होती है, किन्तु मैंने उसको आजीवन कारावास की सजा दी है। क्योंकि कोई पिता अपनी संतान के साथ दुर्व्यवहार नहीं करे, यह एक सबक होगा।"

"ओह!" श्रीमती स्वरूपादेवी ने अपना माथा पकड़ लिया।

"बहुत अच्छा किया आपने।" सावित्री ने कहा—"ऐसे कृतघ्न पिता को तो फांसी की सजा मिलनी चाहिये।"

सविता ने कुछ नहीं कहा। अपनी बच्ची को गोद में उठाकर बाहर चली गई।

गोरी बाबू ने बाग की ओर जाते हुए कहा—"आजीवन

कारावासमे भी मुझको संतुष्टि नहीं हुई तो मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया।" और वे चले गये।

०

तेरह

इसके बाद यहाँ की जिन्दगी, लोगों एवं वातावरण में बहुत-सी तब्दीलियाँ हुईं। समय गुजर गया। और देखते ही देखते बीस साल का समय बीत गया, सारी दुनिया बदल गयी। भारत आजाद हो गया।

इस बीच सविता की बच्ची पांच साल की होकर मर गयी। उस समय सविता बहुत-बहुत रोई थी। सखीचन्द के नहीं आने पर उसको संतोष था कि उनकी निशानी, एक मात्र प्यार की निशानी, रूप की प्रतिमूर्ति लड़की को देख तो रही है। इतने दिन बाद भी सखीचंद का कुछ पता नहीं था। अब तक वह सविता के पास नहीं आ सका था। उसने निश्चय किया था कि बच्ची के सहारे ही वह अपनी जिन्दगी को गुजार देगी, मगर भगवान से यह भी नहीं देखा गया और बच्ची मर गयी।

दस साल बाद गौरी बाबू भी इस संसार से चले गए। उनके मन में किसी दामाद को देखने की लालसा ही लगी रह गयी। एक सखीचन्द भी मिला तो वह भी इनके जीवित नहीं आया और तब तक ये चले ही गए।

पति के मरने के बाद श्रीमती स्वरूपा देवी को पति का 'दुख' समा गया और एक साल बाद वह भी चल बसी। अंत समय तक वह सावित्री को समझाती रही कि वह शादी कर ले। माता का हृदय अपनी बेटी को सुखी देखना चाहता है। मगर सावित्री नहीं

मानी और मन की इच्छा मन ही में रखकर वह भी अपने पति के पास चली गयी।

इसके बाद सावित्री में परिवर्तन हुए। मतीजो के मरने के बाद सविता और माता-पिता के सहारे वह अपने को भुला रखी थी। गौरी बाबू और मां श्रीमती स्वरूपा देवी के मरने के बाद उसका सहारा ही टूट गया। सविता हमेशा उदास रहा करती थी, अतः उसके साथ जीवन के दिन बिताने में सवित्री ने अपने को असमर्थ पाया। उसने अपनी जवानी को मरोड कर रखा था। मन्नी को दबा कर रखा था। इस कारण प्रायः हिस्टीरिया का दौरा उसपर आ जाया करता था और इसी बीमारी के कारण एक दिन वह भी चल बसी।

त्यागपत्र देने के बाद गौरी बाबू ने काफी अच्छी रकम लगा कर शहर के पूर्व एक गांव में अपने लिये एक मकान बनवाया था और सरकारी कोठी छोडकर अपने मकान में आ गये थे। इसी अपने मकान में सभी की मृत्यु हुई थी।

उस खानदान में यदि दुनिया में रह गई तो केवल अकेली सविता! गांव के दो बूढ़े नौकरों के साथ जीवन के शेष दिन वह किसी तरह काट रही थी। वह अपने को जीवित नहीं, मृत समझती थी। जीने का कुछ भी आधार उसके पास न था। न खानदान की कुछ निशानी थी और न पति की ही, जिसके सहारे वह अपने को जिन्दा रखती। अब न उसके पास अरमान थे, न इच्छाएं थीं और न किसी प्रकार की खुशी ही। गांव के सभी लोग प्रायः उसकी काफी इज्जत करते थे। सभी सार्वजनिक अवसरों पर उसकी पूछ होती थी। हर प्रकार की संस्थायें उसके पास दान पाने की लालसा से आती थीं। वह रह रह थी। लोग रख रहे थे।

वह पचासवें बसन्त को पार कर चुकी थी, तब भी उसके पति का कहीं पता नही चल सका था। उसको विश्वास था कि उसका

पति यहीं कहीं नजदीक ही हो सकता है। फिर भी न जाने क्यों वह अपने घर नहीं आ रहा था। यदि पिताजी से डर था तो उनके मरने के बाद तो उसको आ जाना चहिये था। माताजी से डर था तो माताजी के मरने के बाद भी आना चाहिये था। सावित्री से भय था, तो वह भी तो बेचारी नाम रटते-रटते ही चली गयी, तब भी वह नहीं आ सका। उनको यहां आने में अब कोई रुकावट नहीं थी। अब अपना राज्य था। यह सच था कि जवानी के दिन बीत चुके थे। मस्तियां समाप्त हो गईं। लेकिन प्यार का अस्तित्व तो था। प्यार की मस्ती तो कभी कम नहीं हो सकती थी। वह तो मृत्यु-शैय्या तक अपना असर दिखाता है। सच्चे प्यार हेतु तो उनको आ जाना चाहिए था। लगता है---उनका नाम रटते-रटते सविता का भी अन्त हो जाएगा। मगर सखीचंद नहीं आ सकेगा। नहीं आएगा। नही आया।

शायद उसको सविता का यहां रहने का पता ही न चल सका हो।

इसी तरह समय गुजर रहा था। लोग मर-जी रहे थे।

सविता जिन्दा थी। शायद उसे जिन्दा रहना ही था।

कुछ दिनों बाद सविता को पता चला कि पटना में 'अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी' का आयोजन किया जानेवाला है। प्रदर्शनी का समय एक महीना अब रह गया था। जबकि छः माह पूर्व ही सर्वत्र घोषणा कर दी गयी थी, ताकि कलाकार इस प्रतियोगिता के लिए अपनी नवीनतम कृति बना सकें।

मूर्ति प्रतियोगिता मे प्रथम आनेवाली मूर्ति को पन्द्रह हजार रुपये का प्रथम पुरस्कार था। पत्थर की मूर्तियों की मांग विदेशी बाजार में काफी होने लगी थी, जिससे भारत सरकार को विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती थी। इस आयोजन से उसके सामने श्रेष्ठ कलाकार आ जाते और उनसे सरकार तरह-तरह की आधुनिक किस्म की मूर्तियां बनवाकर विदेशी बाजार को भेज सकती थी।

इस प्रदर्शनी ने कला में जान डाल दी। कलाकारों को जीवन मिल गया। यहां की पुरानी पत्थर की कारीगरी सारे संसार में प्रख्यात थी और अब सरकार भी प्रयत्नशील थी, ताकि विदेशी मुद्रा के साथ इस कारीगरी का स्तर भी उच्च कोटि पर पहुंच सके।

कारीगरों में होड़-सी लग गई थी।

प्रदर्शनी प्रारंभ होने में एक माह शेष रह गया था। तब सविता को इसकी भनक लगी थी। अब वह समाचारपत्र मंगवाने लगी ताकि प्रदर्शनी का सारा हाल वह जान सके। समाचारपत्रों में उसकी कोई रुचि नहीं थी। उसको विश्वास था कि इस प्रदर्शनी में सखीचंद अवश्य ही भाग लेगा। भला एक इतना बड़ा कारीगर इस अवसर से लाभ न उठाये। उसको यकीन न था। यह बात सही थी कि उसकी उम्र काफी हो गयी थी। तब भी वह भाग लेगा। नहीं तो उसकी मूर्ति अवश्य ही इस प्रदर्शनी में कहीं-न-कहीं से लाई जाएगी।

इस प्रदर्शनी के आयोजन से भीतर-ही-भीतर सविता प्रसन्न थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि यदि इस अवसर पर सखीचंद का पता नहीं चल सका तो जीवन भर उसका एकदम पता नहीं चल सकेगा और वह नाम रटते-रटते ही मर जाएगी — सावित्री की तरह अपनी छोटी बहन की भांति।

समय ज्यों-ज्यों नजदीक आता जाता था, सविता की खुशी बढ़ती जाती थी। आशा बंधती जाती थी। उसका हृदय रह-रह-कर, धड़क-धड़ककर यह महसूस करता था कि इस प्रदर्शनी में उसका पति, बीमसाल का बिछुड़ा पति सखीचंद अवश्य भाग लेगा।

और इन्तजार के बाद वे घड़ियां आ ही जाती हैं, जिनकी प्रतीक्षा लोग करते हैं।

आज 'अखिल भारतीय पत्थर कला प्रदर्शनी' का आयोजन होने जा रहा था। सारा गांधी मैदान आदमियों से खचाखच भरा

हुआ था। भारतीय संविधान की तृतीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी दिल्ली से यहां पधारने वाली थी। उन्ही के हाथों यह पुनीत कार्य सम्पन्न होने जा रहा था। लोगों की अपार भीड़ थी।

प्रदर्शनी को एक पखवारे तक रखने का आयोजन था, ताकि भारत के सभी प्रान्तों के लोग इसको देख सके। प्रवेश दर दस पैसे रखा गया था ताकि राजा और रंक सभी इसको देख सकें। गांधी मैदान का प्रांगण [illegible] घिरा हुआ था जिसमें मूर्तियों को रखने का प्रबन्ध था। मेन फाटक के पास ही पूछताछ इत्यादि का कार्यालय था। दाहिनी भागों में मोटर एवं साइकिल रखने का प्रबन्ध था। पुरस्कार का वितरण राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन के हाथों होने वाला था।

प्रदर्शनी का आयोजन काफी अच्छी तरह किया गया था। हर प्रान्त के लोग एवं कलाकार यहां आकर ठहरे हुए थे। सभी तरह के लोग यहां दीख रहे थे। लगता था, सारी कला यहां सिमटकर आ गयी हो। पटना की रौनक देखते ही बनती थी। सारा इन्तजाम राज्य सरकार की ओर से किया गया था। प्रत्येक मूर्ति के साथ कारीगर का नाम, पता एवं संभवतः चित्र भी दिया गया था, ताकि लोग उसको पहचान सके, जान सकें।

निर्णायक थे सभी राजनीतिक पार्टियों के प्रधान। दल के इन नेताओं को निर्णायक इसलिए रखा गया था कि कोई पक्षपात न हो सके। कुछ अफवाहें सुनी गयी थी कि इसके निर्णय में पक्षपात होने की संभावना है।

प्रबन्धक थे श्री जयप्रकाश नारायण, सर्वोदय नेता।

उद्घाटन की रस्म अदा हुई। श्रीमती गांधी ने भाषण किया। उन्होंने इस प्रदर्शनी की खूबियों पर विस्तार से प्रकाश डाला, इससे होने वाले लाभों से जनता को अवगत कराया तथा कलाकारों को उत्साहित किया ताकि कला का विस्तार हो सके और देश

पं० जवाहरलाल नेहरू के आधुनिक भारत के स्वप्न को पूरा न कर सकें।

रस्म अदायगी के बाद श्रीमती गांधी दिल्ली वापस चली गईं। निर्णायकों का सारा दल पटना पहुंच चुका था। दो-एक जो रह गये थे वह भी पटना आना ही चाहते थे। पटना का वातावरण कला से पूर्ण हो चुका था।

अशोक की महानगरी पाटलिपुत्र, आज सोने की चिड़िया बनी थी। सारा शहर रंग-बिरंगे झंडों और तड़क-भड़क पंडालों से नववधू की तरह सज रहा था। [illegible] गाड़ियों की कतार थी। शहर रोशन हो रहा था। कोई दुर्घटना न हो जाये। पुलिस का विशेष प्रबन्ध किया गया था। [illegible] प्रदर्शनी पर जेबकतरों की बन आयी थी। उनका धंधा चल गया था।

प्रदर्शनी के उद्घाटन के बाद केवल अफसरों एवं निर्णायकों के लिए ही उस दिन खुला रखा गया। आम जनता के लिए प्रदर्शनी का फाटक दूसरे दिन से खोल दिया गया। दिन के दस बजे से रात के आठ बजे तक। अपार भीड़ थी।

फाटक खुलने के तीन दिनों बाद सविता ने वहां जाने का निश्चय किया और हुआ भी वही। अपने साथ एक नौकर को लेकर वह हावड़ा-मुगलसराय पैसिन्जर से पटना साढे बारह बजे पहुंची। स्टेशन पर उतरते ही उसको ज्ञान हो गया कि प्रदर्शनी देखना आसान नहीं। अभी भी काफी भीड़ चल रही थी। प्रदर्शनी को भीड़ में घुसकर ही देखा जा सकता था। उसने हिम्मत नहीं हारी और एक टैक्सी द्वारा वह गांधी मैदान पहुंची। वहां पहुंचने के बाद वह एक ओर को खड़ी हो गयी और नौकर टिकट लेने चला गया था। टिकट लेकर वह आधे घण्टे बाद लौटा और सविता को सहारा देकर किसी तरह भीड़ में से होकर अन्दर पहुंचा। प्रदर्शनी को देखने के लिए लोगों की जितनी भीड़ थी, प्रबन्ध भी उतना ही अच्छा

किया गया था। जगह-जगह स्वयंसेवक तैनात थे। विशेष पुलिस का भी इन्तजाम किया गया था ताकि किसी को शिकायत का मौका ही न मिले।

भीतर का विशाल इन्तजाम देखते ही सविता समझ गयी कि इस धूमधाम में सखीचन्द का पता नहीं लग सकता। कई हजार मूर्तियां यहां रखी गयी थीं, जिनकी विभिन्न प्रकार की मुद्रा मन को मोहित तो करती ही थी। निर्णय करना कठिन हो रहा था कि कौन अच्छी हो सकती है।

मूर्तियां तरह-तरह की थीं। छोटी से लेकर बड़ी तक एक मूर्ति से लेकर पांच मूर्ति तक एक ही पत्थर के टुकड़े में बनी थीं कोई विदेशी कोई अजन्ता की कला को मातकर रही थी। तो कुछ सस्ती किस्म की भी मूर्तियां थीं। कुछ में आधुनिक कला की भी बू थी तो कुछ में पुरानी सभ्यता। अजीब समा बंधा था। चारों ओर तरह-तरह की मूर्तियां ही मूर्तियां दीख रही थी मूर्तियों को छावनी मे रखा गया था। मूर्ति से चार कदम हटकर मजबूत बांस का घेरा बना हुआ था, जिसके सहारे लोग देख सकते थे और मूर्तियों की रक्षा भी हो सकती थी।

हर दो या तीन मूर्ति पर एक स्वयंसेवक का प्रबन्ध था ताकि भीड़ को नियंत्रित किया जा सके। रोशनी का इन्तजाम बहुत अच्छी तरह किया गया था। अन्दर का कोई भी ऐसा भाग न था जहां रोशनी की चमक न हो। हर एक मूर्ति पर एक फ्लैश लाइट का प्रबन्ध किया था जो दिन को भी जलती रहती थी जिस की चमक से मूर्तियों में जान आ जाती थी।

प्रदर्शनी के आयोजक की सर्वत्र प्रशंसा हो रही थी।

दो कदम आगे बढ़ते ही सविता को लगा जैसे पत्थर की मूर्तियों के रूप मे उसका पति सखीचन्द प्रत्येक मूर्ति से झांक कर कह रहा हो—"सविता! मैं यहां हूं। यदि तुम पहचान जाओ तो

मुझको पा सकती हो, हासिल कर सकती हो, जिससे तुम्हारा जीवन सफल हो जायेगा। तुम धन्य हो जाओगी। जो तुम चाहती थी, वह हो जाएगा।"

सविता एक-एक मूर्ति को ध्यान से देखने लगी। जो मूर्ति उसको अच्छी लगती थी, उसको वह काफी देर तक गौर से देखती तो पता चलता कि यह मूर्ति सखीचन्द की बनाई हुई है। लेकिन मूर्ति के किसी अंग विशेष पर ध्यान जाते ही वह यह सोचकर आगे बढ़ जाती कि उसका सखीचन्द इस तरह की भद्दी मूर्तियां नहीं बना सकता।

प्रत्येक मूर्ति को काफी ध्यान से देखती, वह। कभी-कभी तो एक मूर्ति के पास आधा घण्टा तक समय बिताती और निराश होने पर आगे बढ़ जाती थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि सखीचन्द के हाथ की बनी मूर्ति इस प्रदर्शनी में जरूर आयी होगी। उसका शरीर रह-रह कर पुलक उठता था, सिहर उठता था!! सखीचन्द की याद के रूप में वहां के वातावरण में उसकी आंखें डबडबा आयी थीं और प्रत्येक मूर्ति को देखते हुए आगे बढ़ रही थी।

इस प्रतियोगिता प्रदर्शनी में छोटी-बड़ी बहुत-सी मूर्तियां रखी गई थीं। जिस कलाकार या किसी व्यक्ति ने मूर्ति दी उसको स्थान दिया गया था, जिसमें कलाकार का नाम तथा मालिक का नाम लिखा हुआ था। जनता जयपुर और जोधपुर की कारीगरी को देखने के लिए उमड़ी चली आ रही थी। टिकट दर कम होने के कारण किसी को अन्दर प्रवेश करने में कठिनाई नहीं आती थी।

दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर की सभी मूर्तियों को वह देख चुकी लेकिन सखीचन्द की मूर्ति की झलक उसको नहीं मिली, मूर्ति के रूप में उसका पति नहीं मिला, जिसके लिए वह आशा लगाये बैठी थी। रह-रहकर वह कांप उठती थी। क्या सखीचन्द का पता इस बुढ़ापे में भी नहीं लग सकता ? तब क्या होगा ?

जीवन शून्य दीखने लगा था, मातम ! !

उत्तर दिशा की ओर की मूर्तियों को देखने के ख्याल से जैसे ही मुड़ी वह ठिठक गयी। वहाँ एक बड़ी-सी चार आदमियों की मूर्तियां एक ही पत्थर में बनी रखी थीं। उसका ध्यान मूर्ति की ओर गया। मूर्ति की बनावट पर उसने गौर किया। मूर्ति में दो युवतियां, एक लड़की तथा एक साधारण-सा आदमी दिखाया गया था। उसने सारा ध्यान युवक मूर्ति को देखने में केन्द्रित कर दिया। कभी-कभी वह युवतियों को भी देख लेती थी। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद वह दोनों युवतियों और पुरुष को पहचान गयी। लेकिन छोटी बच्ची को पहचान न सकी क्योंकि मूर्ति में एक-डेढ़ साल की बच्ची दिखाई गई थी। मूर्ति के नीचे लगे हुए चिट की ओर ध्यान दिया तो पाया कि यह नाम इस मूर्ति के अभिभावक का है, जिसने इसे प्रदर्शनी में खड़ा किया है।

मूर्तियों में बने आदमियों को पहचानते ही वह भाव-विह्वल हो गयी। यह मूर्ति निश्चय ही सच्चिदानन्द की बनाई हुई है। वर्ना यदि दूसरा बनाता तो उनकी मूर्तियां, दोनों बहनों की मूर्तियां क्यों बनाता, कैसे बनाता ! ! निश्चय ही यह मूर्ति उन्हीं की बनाई हुई हो सकती है।

पूर्ण विश्वास के लिए उसने एक प्रौढ़ सज्जन से, जो मूर्तियों को गौर से देख रहे थे, सविता ने पूछा—"इस मूर्ति के कलाकार कौन हैं, ज़रा देखकर बतलाने की कृपा कीजियेगा ?"

'क्यों नहीं, बहन ?" और उसने चिट की ओर ध्यान दिया। वहाँ से नजर हटाकर मूर्ति की ओर देखा। इधर-उधर देखा। मूर्ति के प्रत्येक अंग को देखा। अगल देखा, बगल देखा, मगर कहीं नजर नहीं आ रहा था। ज्यादा ध्यान से देखने पर पुरुष के पास एक चिट देखी और कहा—"वहां देखिए। कलाकार का नाम उस नीचे वाली चिट में लिखा हुआ है।"

सविता का ध्यान उधर गया। उसने पढ़ा। चिट पर लिखा था—"कलाकार—सखीचन्द !"

सखीचन्द के नाम की चिट पढ़ते ही उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। आँखें डबडबा आयीं। उसका स्वप्न, जो वह आज तीस वर्ष से लगातार देखती रही थी, पूरा हुआ। उसका पति मिल गया। उसका प्यारा मिल गया। माता-पिता की परवाह न कर जिस गवार एक देहाती को अपना पति मानकर भाग गयी थी उसके साथ, उसका पता चल गया। अब वह अपने पति को पा सकती है। यदि नहीं भी पा सकती तो इस मूर्ति के सहारे वह जिन्दगी के शेष बचे दिनों को बिता सकती है। सखीचन्द ! उसका पति ! सावित्री ! मेरी बच्ची। सखीचन्द की निशानी यह मूर्ति।

दो-तीन मिनट तक तो वह हतप्रभ-सी खड़ी रही। अब उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसने बांस के घेरे को पार किया और मूर्ति के पास पहुंचते ही उससे लिपट गयी।

लोगों को आश्चर्य हुआ। यह देखते ही पास में खड़ा स्वयं-सेवक चिल्लाया, "हां, हां, माताजी, यह आप क्या कर रही है ?"

मगर सविता को इन बाह्य वस्तुओं से कुछ लेना-देना नहीं था। उसने कुछ सुना ही नहीं, जैसे वह बहरी और गूंगी हो गयी थी। उसने किसी की एक न सुनी और मूर्ति से लिपट कर रो पड़ी, उसका नौकर पत्थर की मूर्ति की भांति खड़ा-खड़ा यह सब देख रहा था। उसकी समझ में यह नहीं आया कि उसकी मालकिन इस मूर्ति से लिपट कर रो क्यों रही है।

घेरे के अन्दर से हाथ बढ़ाकर नौकर ने सविता को झकझोरा, "मालकिन ! मालकिन ! होश में आइये।"

किन्तु सविता कुछ नहीं सुन रही थी।

एक से एक कई स्वयंसेवक वहां पहुंच गये। लोगों की भीड़ लग गयी। प्रदर्शनी में हल्ला मच गया। सब जगह बात फैल

गयी। लोग यह जानने के लिए उमड़ पडे कि आखिर बात क्या है। देखते ही देखते वहां भीड़ इकट्ठी हो गयी। जब काफी स्वयसेवक स्थिति को काबू में नही कर सके तो पुलिस वहां आ पहुंची। उसने भीड़ को हटाया और बुढ़िया के पास शांति से खड़े रहे।

तब तक प्रदर्शनी के कुछ पदाधिकारी वहां पहुंच चुके थे। स्थिति को उन्होने काबू मे किया और सविता को अच्छी तरह समझा-बुझा कर कार्यालय में ले गये।

सविता इस मूर्ति को छोड़कर जा ही नही रही थी। बहुत-कुछ कहने पर कि यदि मूर्ति के संबंध में सारा रहस्य बतला दोगी तो तुम जैसा चाहोगी, वही होगा, मूर्ति को छोड़कर जाने पर राजी हुई थी।

मूर्ति को छोड़कर वह कार्यालय तो चली गयी थी, किन्तु आंखों से आंसू लगातार बह रहे थे। भीड़ ने वहां भी उसका साथ दिया। लोगों की नजरें कार्यालय की ओर ही थीं। लोग जानना चाहते थे कि आखिर बात क्या है? एक बुढ़िया ने ऐसा क्यों किया? उस मूर्ति से उसका क्या सम्बन्ध हो सकता है?

आधा घन्टा बाद जब उसका जी स्थिर हुआ तो अधिकारियों के पूछने पर उसने पूछा—"इस प्रदर्शनी के प्रबन्धक कौन है?"

"सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायाण!" एक अधिकारी ने जवाब दिया।

"कृपया आप मुझे उन्ही के पास ले चलने का प्रबन्ध करें।" सविता ने कहा।

"कुछ बात भी तो बताइये।"

"मैं आप लोगो से कुछ नही कह सकती। मैं उन्हीं से दो-चार बातें जानना चाहूंगी।"

"आप अपना परिचय भी तो दें।" एक अधिकारी ने झुंझला कर कहा—"आप कुछ बताती हैं न कहती हैं, प्रबन्धक के पास ले

चलिए। तो प्रबन्धक महोदय के पूछने पर हम क्या जवाब देंगे?"

"आप लोगों के समक्ष मैं यह नहीं बतला सकती कि मैंने ऐसा क्यों किया। इसमें क्या रहस्य हो सकता है।" सविता बोली, "भले ही मैं अपना परिचय आपको बता सकती हूं। मैं शाहाबाद के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री गोरी बाबू की बड़ी पुत्री हूं। मेरा नाम सविता है।"

"गोरी बाबू?" एक अधिकारी ने आश्चर्य से कहा।

"जी, हां।" सविता ने कहा—"अतः कृपा कर आप मुझे उनके पास ले चलें।"

"इसका प्रबन्ध तुरंत किया जा रहा है।"

सविता वहां मौन बैठी रही। सोचने लगी, इस मूर्ति का अभिभावक कौन हो सकता है? उसने इस मूर्ति को कहां देखा था, इस मूर्ति को वह पाये कैसे? उसके समय में कोई ऐसी मूर्ति उन्होंने नहीं बनाई थी। वे तो अक्सर छोटी-छोटी ही मूर्तियां बनाते थे। उनका कहना था कि बड़ी मूर्तियां बड़े आदमियों की शोभा के लिए हैं और छोटी मूर्तियां सभी के लिए। यदि नाम अमर करना है तो छोटी-छोटी मूर्तियां ही बनानी चाहिए ताकि छोटे लोगों के घरों तक उस कलाकार का नाम जा सके। शायद मेरे आने के बाद ही उन्होंने यह मूर्ति बनाई है। क्या इस मूर्ति को उन्होंने बेचा होगा? इस तरह की मूर्तियों के दाम भी तो काफी अधिक होंगे, फिर बेचना'''। नहीं ''नहीं, वह इस मूर्ति को कभी नहीं बेच सकते। इस मूर्ति को जीवन से सम्बद्ध जानकर ही उन्होंने बनाया है। इस मूर्ति को बनाने में सारी कारीगरी लगा दी होगी, क्योंकि यह उनकी या हम सभी की इस धरती पर निशानी रहेगी। हम मिट जायेंगे, मगर यह मूर्ति हमारी याद दिलाती रहेगी।

फिर सोचती—मूर्ति के अभिभावक को सखीचंद का पता अवश्य होना चाहिए। उसने मूर्ति के कारीगर का नाम भी दिया

है। यदि उसको उनका पता नहीं होता तो वह नाम नहीं दे सकता था या हो सकता है कि उसके वे साथी रहे हों।

उसने जल्दी में कहा—"क्या प्रबन्धक के पास चलने में अभी देर है?"

"देखिये।" एक प्रमुख अधिकारी ने जवाब दिया—"मैंने वहां टेलीफोन किया था। पता चला कि अभी-अभी वे भोजन कर रहे हैं। टेलीफोन आने की सूचना उनको दे दी गई है। उधर से खबर आई है कि भोजन करने के पश्चात ही वे बातचीत करेंगे। अतः अभी थोड़ी देर आपको ठहरना होगा।"

सविता ने इस बार कुछ नहीं कहा। वह वहां से उठकर प्रदर्शनी के बाहर की ओर बरामदे में गई और एक आरामकुर्सी पर बैठ गई। साथ में उसका नौकर भी था।

अब भी कार्यालय के आस-पास भीड़ जमा थी। लोग यह जानने की चेष्टा में थे कि कौन बात थी लेकिन बतलाने वाला वहां कोई नहीं था। प्रश्नवाचक चिन्ह से सभी एक-दूसरे की ओर देख रहे थे।

कुछ लोग वहां से हट भी गए थे और उनका स्थान कुछ नए लोगों ने ले लिया था।

बाहर से भी कुछ लोग सविता को देख रहे थे और समझने की कोशिश में थे कि उस मूर्ति से इसका क्या सम्बन्ध हो सकता है। यह तो सभी को मालूम हो गया था कि एक बुढ़िया एक मूर्ति से लिपटकर रोने लगी थी, मगर क्यों रो रही थी? इसका रहस्य रहस्य ही रह गया। किसी को पता नहीं चल सका।

जिस मूर्ति से लिपटकर सविता रोई थी, उस मूर्ति को देखने के लिए काफी लोग इकट्ठे हो गए थे। कौन-सी खूबी थी जो इसी मूर्ति से लिपटकर वह बुढ़िया रो रही थी।

सविता बाहर बैठी चिंता-ग्रस्त थी।

अन्दर मूर्ति के पास काफी भीड़ थी।

कुछ देर बाद एक अधिकारी ने आकर सूचना दी कि प्रबन्धक साहब से बातचीत हुई है। उन्होंने अभी आने में असमर्थता प्रकट की है। कहा है कि हम लोग आपको वहीं ले चलें। अतः आप कृपा कर हमारे साथ चलने की तकलीफ करें।

मारे खुशी के सविता अधिकारी का मुंह ताकने लगी।

उसी समय दो मोटर गाड़ियां आ गईं। एक पर सविता, उसका नौकर और एक उच्च अधिकारी बैठे तथा दूसरी पर चार अन्य अधिकारी। और मोटरें वहां से चली गईं।

भीड़ अब छंटने लगी थी।

चौदह

अखिल भारतीय पत्थर कला प्रदर्शनी के प्रबन्धक श्री जय-प्रकाश नारायण ने सारा हाल सविता से पूछा और सविता ने भी अपने दिल का सारा हाल कह दिया। उसने कोई बात नहीं छुपाई, सारा हाल जानने के बाद प्रबन्धक महोदय ने काफी दुःख प्रकट किया और कहा—"जिस व्यक्ति के नाम से यह मूर्ति प्रदर्शनी में आई है उस व्यक्ति की स्वीकृति के पश्चात, परिणाम निकलने के बाद ही आपको दी जाएगी। इसमें हमको किसी प्रकार का एत-राज,नहीं है।"

सविता ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"मूर्ति के अभिभावक के पास मुझको पहुंचवा दें या उनका सही पता बता दें ताकि मैं उनकी स्वीकृति प्राप्त कर सकूं।"

प्रबन्धक ने कहा—"वे हैं तो बनारस के, लेकिन मूर्ति के साथ वे भी पटना में ही हैं। उनके पास हमारे ये आदमी आपको इसी

मोटर पर पहुंचा देंगे। आप वहां आसानी से पहुंच जायेंगी। जैसा भी हो, हमको पत्र द्वारा सूचना दिलवा भेजियेगा।"

"इसके लिए धन्यवाद!" सविता ने कहा और उठकर खड़ी हो गई।

यह देख सभी लोग उठकर खड़े हो गए और मोटर द्वारा वहां पहुंचे, जहां सविता को जाना था या जो इस मूर्ति के अभिभावक थे। सविता को वहां तक पहुंचाकर सभी लोग वापस प्रदर्शनी में आ गए और अपना काम देखने लगे।

उन महाशय के पास पहुंचकर उसने एक पत्र उनको दे दिया, जो प्रबन्धक महोदय ने दिया था। अत: सविता को अपना परिचय देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी।

परिचय जानने के बाद उन महाशय ने सविता को बैठक में बैठाया तथा नौकर से चाय भिजवा दी। थोड़ी देर बाद वह भी बैठक में आ पहुंचे और पूछा—"आपने कैसे तकलीफ की?"

"तकलीफ तो मैं आपको देने आई हूं।" सविता ने कहा।

"कहिये।" उस व्यक्ति ने सविता की ओर देखा और नम्र वाणी में कहा—"जो कुछ मुझसे बन पड़ेगा, यथासाध्य मैं आपकी मदद करने की चेष्टा करूंगा।"

सविता ने तपाक से बिना किसी भूमिका के कहा—"मैं यह जानने आई हूं कि इस मूर्ति को आपने कहां पाया?"

"कौन-सी मूर्ति?"

"वही पत्थर की मूर्ति।" सविता ने सीधे शब्दों में कहा।

"मैं समझा नहीं?" उस व्यक्ति ने कहा—"आप जरा खोलकर और साफ-साफ कहें, ताकि मुझको समझने में दिक्कत न हो।"

"जिस पत्थर की मूर्ति को प्रदर्शनी में आपने अपने नाम से जमा किया है, उस मूर्ति के बारे में मैं पूछ रही हूं।" सविता ने पूछा—"कहां मिली वह मूर्ति आपको?"

"वह मूर्ति मुझको कहीं मिली नहीं और न मैंने उसको खरीदा है।" उस व्यक्ति ने कहा—"इस मूर्ति की एक अनोखी और लंबी कहानी है।"

'लंबी कहानी ?' सविता ने मन-ही-मन कहा। मूर्ति किसी विशेष कारण से उनको मिल सकी है। यह अनुमान उसका सत्य भी था। इतनी मेहनत और लगन से बनाई गई मूर्ति को सखीचंद रुपयों से बेच नहीं सकता था। फिर तो उसने अपने जीवन की सारी कहानी इसी मूर्ति के माध्यम से कह दी थी। सखीचंद के सारे अरमानों का केन्द्र थी, यह मूर्ति। यह सही है कि किसी विशेष परिस्थिति में वह मूर्ति इनके हाथ लगी है। उसने कहा—"कृपया मैं उस कहानी को सुनना चाहती हूं।"

"उस कहानी से आपको दिलचस्पी क्यों है ?"

सविता ने उस व्यक्ति की तरफ देखकर एक लंबी सांस ली और कहा—"उस कहानी में मेरा जीवन छिपा है और मैं स्वयं उस कहानी में सम्मिलित हूं।"

"मैं समझा नहीं।" उस व्यक्ति ने कहा।

"मूर्ति के कलाकार मेरे पति हैं।" सविता ने कहा—"काफी दिनों से उनका पता नहीं चला था, अतः पता लगाने के लिए ही आपके पास तक मैं बहुत कठिनाई से पहुंच सकी हूं। आप ही पर सब-कुछ निर्भर करता है। आपकी रज़ामन्दी से मेरा अधूरा जीवन पूर्ण हो सकता है, सार्थक हो सकता है !"

"बड़ी अचरज की बात है ?"

"जी हां।" सविता ने कहा—"अचरज की तो बात है ही। किन्तु इस दुनिया में सभी कुछ सम्भव है। कुछ इस किस्म का संयोग है कि मैं उस कलाकार से संबंधित हो गई हूं।"

"एक पत्थर का कलाकार और आप !" उस व्यक्ति ने कहा, "वास्तव में अचम्भे की बात है।"

मैं कहानी सुनना चाहती हूं।"

"अभी ?"

"जी।" सविता ने कहा—"यदि अभी संभव हो तो इसी समय।"

"आप कुछ घबड़ाई हुई-सी लग रही हैं ?"

"मैं घबड़ाई हुई नहीं हूं, बल्कि उतावली हो रही हूं।" सविता ने कहा—"खबर के लिए कि अब वे किस हालत में होंगे, कहाँ होंगे ? मैं इसी कारण उनसे संबंधित कहानी को जल्दी सुनना चाहती हूं।"

"मगर नाश्ते का समय हो गया है।"

"इन सब बातों की आप तनिक भी चिंता न करें।" सविता ने कहा—"मुझको सब्र करना कठिन-सा लग रहा है।"

"कहानी तो मैं आपको सुना दूंगा ही।" उस व्यक्ति ने कहा, "मैं अन्दर जा रहा हूं। नाश्ता भिजवा दे रहा हूं। आप भी नाश्ता करके स्वस्थ हो लें तब तक मैं भी नाश्ता से फुर्सत पा लेता हूं। तब मैं आपको पूरी कहानी एक ही सांस में सुनाऊंगा, क्योंकि आपकी कहानी में दुःख भरा हुआ है और उस दुःख से आपके भी दुःखी होना स्वाभाविक है।"

"जैसा आप उचित समझें।" सविता ने कहा।

और वह व्यक्ति अंदर चला गया।

आधा घन्टा बाद वह फिर बैठक में आ गया। इस बार वह अकेला नहीं था। उसके साथ उसकी पत्नी भी थी। दोनों अभी जवान ही थे, बाल-बच्चा भी नहीं हुआ था। इस कमरे में आते ही सविता का चेहरा खिल गया। दोनों खाली कुर्सियों पर बैठ गए।

सविता ने उस जोड़े की ओर गौर से देखा।

उस व्यक्ति ने कहा—"इस पत्थर की मूर्ति की कहानी भी आपके जीवन की कहानी से कम दर्दनाक नहीं है। सही में मैंने

वैसा कारीगर आज तक नहीं देखा। इस प्रतियोगिता में भाग लेने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं थी, मगर एक अच्छे कलाकार को सम्मान मिले, इसी उद्देश्य से उस मूर्ति को लेकर मैं यहां आया हूं और परिणाम निकलने तक पटना में ही रहूंगा।"

सविता एकदम से मौन थी।

उस व्यक्ति ने एक बार अपनी पत्नी की ओर देखा और देखकर मुस्कराया। और मुस्कराकर कहने लगा— 'आज से करीब दस साल पूर्व की बात है यह, जो मैं कह रहा हूं। इन (पत्नी) के हाथ की चूड़ी टूट गई थी। टूटी हुई चूड़ी की जगह नई चूड़ी के लिए यह काफी जिद कर रही थी। पत्थर की चूड़ी का दाम अधिक था, अत: मैं टाल-मटोल करने लगा और देखते ही देखते दो-चार महीने टल गया। इनकी जिद आखिरी सीमा पर एक दिन पहुंच चुकी थी और मैं खरीदने की स्थिति में नहीं था। हम लोग आंगन में वाद-विवाद कर ही रहे थे कि दरवाजे पर एक भिखमंगा आया।…"

"उसकी उम्र क्या थी, उस समय?" सविता ने पूछा।

"यही पैंतालिस के लगभग…।"

सविता बोली—"आगे कहिए।"

"रंग गोरा था। यहां तक कि सारा बदन गोरा था। देखने में काफी सुन्दर लगता था।" उस व्यक्ति ने कहना शुरू किया—"उसकी दाढ़ी और बाल काफी मात्रा में बढ़े हुए थे। बाल अस्त-व्यस्त थे, अत: भिखमंगे के साथ-साथ वह पागल के समान भी लग रहा था। किन्तु मुझे ऐसा लगा कि वह किसी अच्छे खानदान का आदमी है। परिस्थितिवश बाध्य होकर इस तरह के काम पर उतारू हो गया होगा। पत्नी से पिंड छुड़ाने तथा भीख देने के बहाने मैं बाहर आ पहुंचा। किन्तु उस समय अपनी जिद के कारण यह कब पीछा छोड़ने वाली थी, यह भी पीछे से भिखमंगे के पास पहुंच गयी, जहां मैं खड़ा था। मैंने उसका घर-द्वार पूछा ताकि बातों में फंसने के बाद यह चूड़ी की बात भूल जाय। मगर बात करते-करते भी यह अपनी चूड़ी की बात ही अलापती रही। हम दोनों की बातें वह भिखमंगा भी सुन रहा था। काफी देर के बाद, जब उस भिखमंगे से न रहा गया, तब उसने मुझसे पूछा—'बाबूजी! बहिनजी कैसी चूड़ी खरीदने की बात कर रही हैं?' शायद वह समझ गया

था कि पत्थर की चूड़ी के लिए हमारा वाक् युद्ध चल रहा था। वरना चूड़ी के नाम पर सोने की चूड़ी की बात ही सामने आ सकती है। मैंने कुछ सत्य और कुछ व्यंग्य भरे शब्दों में कहा—'इनके हाथ की एक पत्थर की चूड़ी टूट गयी है, अतः उसी के लिए आज सवेरे से जिद्द पर अड़ी हुई है कि आज ही खरीदा जाय। औरतों की जिद्द अच्छी नहीं होती। मैं यह सब भिखमंगे की आड़ में इन से कह रहा था। उसने कहा—'पत्थर की चूड़ी? नमूने के तौर पर कुछ बची तो होगी।' मैंने समझा, लगता है यह भिखमंगा कुछ पागल भी है। तभी मैं बोला—'हां! अभी तो दोनों हाथ को मिलाकर तीन चूड़ियां बच रही है। किन्तु तुमको इस नमूने की चूड़ियों से क्या लेना-देना है?' उसने गंभीर स्वर में कहा—'बस, मैं एक नजर उनको देख लूं, तब जैसा होगा, कहूंगा।' अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह पागल भी है। अतः मैंने इनसे कहा—'दिखा दो, अपने हाथ की उन चूड़ियों को, जो बची हुई हैं।' यह बात सुनकर इन्होंने मुँह बिचकाया। इनका मुँह बिचकाना शायद उसने देख लिया था। कहा—'बहनजी! दो क्षण के लिए आप एक चूड़ी मुझको दिखा दें, बस।' इन्होंने तब चूड़ी निकालकर मुझको दी और मैंने उसको वह चूड़ी दे दी। चूड़ी को उलट-पुलट कर उसने देखा और कहा—'ऐसी या इससे अच्छी चूड़ी मैं दो दिनों में तैयार कर सकता हूं।' उसकी इस बात से हम दोनों अवाक् रह गये। मगर मुझको पूर्ण विश्वास हो गया कि इसके पागल होने में अब तनिक भी सन्देह नहीं है। मैंने मजाक में कहा—'क्या क्या चीज चाहिए, तुमको?' मेरे व्यंग्य को वह समझा या नहीं मैं नहीं कह सकता। तब भी उसने सहज भाव से कहा—'आप मेरे साथ बाजार चलें, मैं आवश्यक सामान खरीद लूंगा। आप इस भ्रम में नहीं रहें कि आपको ज्यादा खर्च पड़ेगा। जितना दाम चूड़ियों का होगा, उससे आधा दाम उन वस्तुओं का होगा।' बाध्य होकर इनके कहने पर मैं उसके साथ बाजार गया। एक पत्थर का टुकड़ा और एक छोटा-सा सरिया खरीद कर उसने मुझको दे दिया और थोड़ा छड़ लेकर उसने कहा—'मात्र आठ आने पैसे आप मुझको दे दें और आप घर चलें। मैं इससे कल में बनवा कर तुरन्त ही लौटूंगा।' सरिया और पत्थर का टुकड़ा लेकर मैं अपने घर आ गया।' इसके बाद वह चुप

हो गया।

उसकी पत्नी इस पुरानी कहानी को नये सिरे से सुन रही थी, मगर चेहरे पर संतोष के चिन्ह थे।

सविता अपने पति की दुःख-दर्द से भरी कहानी सुन रही थी जिसमे व्यथा भरी थी, परेशानी भरी थी और भरा था कला का जीवन !!! उसके चेहरे पर व्यग्रता के लक्षण थे। कभी चेहरा उदास हो जाता था तो कभी आंखों में पानी भर आता था। तब भी वह शांत थी, मूर्तिवत् !!

सविता का नौकर भी जमीन पर बैठा इस अनोखी कहानी को सुन रहा था। मगर उसकी समझ मे कुछ आता था और कुछ नहीं आता था। सब मिलाकर वह समझ रहा था कि नए मालिक के बारे में ये लोग बातें कर रहे हैं। मगर बात का लक्षण क्या है, वह पूरी तरह समझ नहीं पाया था। उसके चेहरे के भाव कभी बनते थे तो कभी बिगड़ते भी थे। वह कभी कहने वाले की ओर देखता तो कभी अपनी मालकिन की ओर। चारों ओर शांति थी। कभी-कभी एक-आध मोटर इस रास्ते से गुजर जाती। नहीं तो साइकिल की घंटियों की 'टन-टन' की आवाज बराबर ही आ रही थी।

सविता सोचने लगी—मणीचंद ने पागल का भेष बना लिया था। ऐसा क्यों? उसके पास तो काफी रुपये थे, जब वह उससे बिछुड़ा था। यदि वह चाहता तो एक अच्छी-सी दुकान खोलकर आराम की जिन्दगी व्यतीत कर सकता था। मगर उसने ऐसा नहीं किया और रुपये समाप्त होने के बाद भीख मांगने लगा। छिः छिः, ऐसा नीच काम भी किया जा सकता है। वे कलाकार थे ही, यदि किसी दुकान पर भी रह जाते तो पेट भर कमा सकते थे। मगर उन्होंने ऐसा भी नहीं किया। भीख मांगना तो उनका धर्म नहीं है, फिर...! नहीं, नहीं, काम करने मे उनका मन नहीं लगता होगा तभी उन्होंने काम नहीं किया। सोचा होगा कि बच्चों और पत्नी से बिछुड़ कर अब रह ही क्या गया है, जिसको बचाकर रखा जाय। शायद इसी कारण भीख मांगने पर आमादा हो गये होंगे। मगर कलाकार का जीवन और चाह कभी छिप सकता है? समय आते ही वह सामने आ गया और अपने हाथ की सफाई को प्रदर्शित करने को तैयार हो गया। भगवान जो न करे...

थोड़ी देर ठहरने के बाद अपना गला साफ करते हुए उसने कहना आरम्भ किया—"लोहे की छड़ों की छोटी-छोटी कलमें बनवाने के बाद वह दो घन्टे बाद आया। तब तक शाम हो गयी थी। उसकी सुविधानुसार भी भोजन किया और बैठक में उसको छोड़ कर हम लोग सोने चले गये। उसके ठहरने के लिए बैठक में ही इन्तजाम किया गया था। सच पूछो तो इनको कभी विश्वास नहीं था [illegible] हम उसको अपने यहाँ रख सकेंगे। कभी-कभी हम सोचते भी थे कि यदि वह भाग भी जायगा तो लेकर क्या जायगा। उसके पास कुछ भी तो नहीं होगा, सिवाय कुछ मामूली सामान के। [illegible] नाम पर कुछ [illegible] नहीं मिल सकता। [illegible] सवेरे जब हम [illegible] सोकर उठे तो हमने खटखट की आवाज सुनी। मुझे कुछ अचरज [illegible] हुआ। बैठक [illegible] चक्कर [illegible]। [illegible] चूड़ियों का आधा काम लगभग तैयार हो चुका था केवल [illegible] बाकी रह गयी थी। अच्छी तरह [illegible] के बाद मैं अन्दर उसके पास गया और सारा हाल [illegible] सुना दिया। तब ये भी वहां आयी और झांक कर देखा कि वह क्या कर रहा है तथा कैसे कर रहा है। इन्होंने अच्छी तरह देखने के बाद मुझसे धीरे से कहा—'यह तो कोई अच्छा कारीगर मालूम पड़ता है।' मैंने भी जवाब दिया— हां, यह अच्छे कारीगरों में से मालूम होता है। लगता है, समय के फेर में पड़कर यह इस दिशा को पहुंचा है।' इसके बाद हमने उसको टोका नहीं। वह स्वतः ही काम करता रहा। हमने समय पर भोजन उसके कमरे में ही भिजवा दिया था। फिर भी मेरा ध्यान उसकी ओर था कि वह किस समय क्या करता है। दो बजे के लगभग वह उठा और नित्य-क्रिया से निबटने के बाद मुंह धोया और चटपट स्नान कर लिया और भोजन करने के बाद चूड़ियों को बनाने में जुट गया। इस काम में मुश्किल से उसने एक घन्टे का समय गंवाया था। शाम को भी समय पर हमने भोजन भेजवा दिया था और हम भोजनोपरान्त सोने चले गये। पता नहीं उसने कब खाना खाया और सोया। सवेरे उठा तो वह सो रहा था। हमने, उसके काम में एकदम बाधा नहीं दी। दस बजे वह सोकर उठा और नित्यक्रिया से निबटने के बाद मुंह धोकर नहाने की तैयारी कर ही रहा था, मुझको देख लिया। और उसने कहा—'बाबूजी! चूड़ियाँ

पूर्णतया तैयार हो गई हैं। उनको अब काम में लाया जा सकता है।' और बैठक में से चूड़ियाँ लाकर मेरे हाथों में रख दीं। तब तक यह भी आ गई थीं। चूड़ियों की नक्काशी, सफाई और चमक देख कर हमारी आंखें बैंगन की भांति फट गयीं। सचमुच में उसने बहुत अच्छी चूड़ियां बनाई थीं।" इतना कहकर वह चुप हो गया।

अपनी छलछला आयी आंखों को सविता ने पोंछा और बोली—"इसके बाद···?"

सविता का नौकर भी यह सब चुपचाप मन लगाकर सुन रहा था। उसकी आंखों में भी जल भर आया था। उदास चेहरा हो गया था, उसका भी।

उसने कहना शुरू किया—"चूड़ियां देने के बाद वह एक माह तक कुछ न बोला। हम समय पर खाना भेजवा देते थे। उसने कभी भी कोई फालतू चीज या एक पैसा भी नहीं मांगा। उसको बीडी या सिगरेट पीते भी हमने नहीं देखा। चाय के नाम पर तो उसकी नानी ही मर जाती थी। एक माह बाद उसने एक दिन मुझसे कहा—'बाबूजी! मुझे बीस-पच्चीस रुपये वाले एक पत्थर की आवश्यकता है, अतः एक दस का नोट दीजियेगा। मेरे पास दस रुपये हैं।' मैंने कुछ नहीं सोचा और न पूछा ही, चुपचाप एक दस का नोट निकाल कर उसको दे दिया और कहा—'तुम स्वयं ही बाजार जाकर खरीद लेना।' वह बाजार चला गया और आधा घन्टा बाद एक बड़ा-सा सफेद पत्थर लेकर लौटा। यह चकित थीं कि इतने बड़े पत्थर का क्या होगा। परन्तु मैंने ही इनको समझाया कि अब की बार यह कोई बडी-सी मूर्ति बनायेगा। उसी रात को उसने उस पत्थर में काम लगा दिया। जब देखता तो 'खट-खट' की आवाज सुनता। जब कभी उसको बैठा हुआ देखता तो पाता कि वह कलमों को पत्थर पर रगड़-रगड़ कर तेज कर रहा है। उसकी मेहनत और कला से प्रसन्न होकर हमने उसके लिए बढ़िया भोजन का इन्तजाम करा दिया। असल में उसकी कारीगरी ने हमारे हृदय में उसके प्रति श्रद्धा और सम्मान भर दिया था। एक···दो···तीन···चार दिन करके दो माह बीत गये। वह लगातार काम करता रहा। कभी हमने उसको सोते हुए नहीं देखा। जब देखता तब बन्द कमरे में वह 'खट्-खट्' कर रहा होता था। यहां तक कि उसके कपड़े भी काफी गंदे हो गये थे। हम

चाहते थे कि उसका ध्यान उसके कपड़ों के प्रति आकर्षित करें, किन्तु हमको कभी मौका ही नहीं मिला' या यों कहिए कि हमको मौका ही नहीं दिया। कभी-कभी हम ताक-झांक कर मूर्ति को देख लिया करते थे। मूर्ति पूर्णतया तैयार हो चुकी थी। उसके एक दिन बाद ही उसने कहा—'बाबूजी! मेरा काम अब समाप्त हो गया है। अब मैं यहां से चला जाऊंगा।' मैंने कहा—'तुम अब यहां से कहीं नहीं जा सकते। मैं और पत्थर ला देता हूं, तुम अपनी इच्छानुसार मूर्तियां बनाओ चाहे बैठे रहो, परन्तु यहां से न जाओ।' उससे मुझको सहानुभूति-सी हो गयी थी। एक लालच-सा हो गया था। मैं नहीं चाहता था कि इतना अच्छा कारीगर मारा-मारा फिरे। कम से कम यहां भर पेट खाना और आराम से रहता तो है। लेकिन उसने जवाब दिया—'यह मेरे हाथ की अंतिम कला है, कारीगरी है। अब मैं अपना देश छोड़ दूंगा या यों कहिये कि अपनी कलम तोड़ दी है, मैंने। बहुत दिनों की साध थी कि एक मूर्ति बनाकर अपनी याद को इस धरती पर छोड़ जाऊं। आज वर्षों का स्वप्न पूरा हो गया। अब यदि मैं मर भी जाऊं तो मुझे तनिक भी गम न होगा। इस मूर्ति के रूप में मेरा जीवन सफल हो गया।' इतना कहने के बाद वह चुप हो गया और अपने नौकर को कुछ इशारा किया।

सविता ने उस व्यक्ति की ओर देखा और अपनी आंखों को पोंछ लिया।

सविता के नौकर ने भी उस व्यक्ति की ओर ताका और एक लम्बी सांस छोड़कर और सुनने की प्रतीक्षा करने लगा।

तब तक नौकर एक ट्रे में चार कप चाय बनाकर ले आया और ना-ना करते-करते चारों ने चाय पी।

उसने चाय पीकर कहा—"और मेरे लाख मना करने के बावजूद भी वह चला गया। इन्होंने तो उसको रोकने के लिए उसका हाथ तक पकड़ लिया था, उस दिन। किन्तु उस पर उसने इनका पैर स्पर्श किया और चला गया। मूर्ति के बारे में उसने कुछ साफ-साफ कहा नहीं था, लेकिन वह अपने साथ ले भी नहीं गया था। मूर्ति मेरे ही पास रह गयी तो हमने कुछ कहा नहीं। अतः उसके चले जाने के बाद मूर्ति हमारे पास ही रह गई।"

सविता की आंखों से आंसू की धारा बह चली थी, जिसको वह

बार-बार पोंछ रही थी। सारा वातावरण मरघट की भांति शांत था।

"ओह···!" उस व्यक्ति की पत्नी से, जो सारी कहानी जानती थी, नहीं रहा गया।

नौकरों की आंखें भी छलछला आयी थीं।

"आप रो क्यों रही हैं?" उसकी पत्नी ने पूछा।

इसका उत्तर सविता ने कुछ नहीं दिया। वह सोच रही थी कि इनके पास से लखीचंद को गये हुए दस साल हो गये। उसका कुछ भी पता नहीं चल सका है। प्रतिज्ञा के अनुसार अब वह कारीगरी करेगा नहीं। पैसा उसके पास है नहीं। तब वह इस समय क्या कर रहा होगा? क्या भिखमंगा बनकर अपना समय दीनों की भांति गुजार रहा होगा? या किसी होटल में प्लेटें धोने का काम कर रहा होगा? इसका ध्यान आते ही उसका हृदय दुःख से भर गया।

"आपने कहा था कि पूरी कहानी सुनने के बाद यह बताएंगी कि मूर्ति से क्या लगाव हो सकता है।" उस व्यक्ति ने कहा।

"हां, बताऊंगी।" सविता ने कहा—"किन्तु एक शर्त पर।"

"वह क्या?" उसकी पत्नी ने पूछा।

"यदि आपको सम्बन्ध जानने के बाद मेरे ऊपर तरस आ जाये तो आप उस मूर्ति को मुझे दे देंगे?"

"सम्भव हुआ तो···"

बीच से ही बात काटकर सविता ने पूछा—"उस मूर्ति में क्या-क्या दिखलाया गया है?"

"दो युवतियां, एक बच्चा और एक गवांर युवक!" उस व्यक्ति ने कहा।

सविता ने कहा—"ध्यान से देखने के बाद युवक और उसमें की एक युवती को आप पहचान सकेंगे?"

"क्यों नहीं?" उस आदमी ने कहा—"बशर्ते कि उन आदमियों को मैंने कभी देखा हो।"

"तो अभी आप मेरे साथ चलें।" सविता ने कहा—"हाथ कंगन को आरसी क्या। चलकर देख ही लिया जाय।"

उस आदमी ने अपनी पत्नी की ओर देखा और पत्नी ने अपने पति की ओर। जैसे वह आंखों ही आंखों में पूछ रहे हों कि क्या अभी प्रदर्शनी में चलना ठीक होगा? दोनों की आंखों ने जवाब

दिया कि चलना अच्छा होगा, क्योंकि यह बुढ़िया इसके लिए काफी बेचैन है। दूसरे उस मूर्ति से इसका गहरा सम्बन्ध जान पड़ता है, ऐसी अवस्था में यदि हमारी थोड़ी-सी तकलीफ से उसका उपकार हो जाय तो क्या हर्ज हो सकता है।

"चलिये !" और युवक उठकर खड़ा हो गया।

यह देख सविता भी उठकर खडी हो गई। सभी लोग बाहर आये और एक टैक्सी द्वारा प्रदर्शनी पहुंचे और टैक्सी का भाड़ा चुकाया, सविता ने। हालांकि वह व्यक्ति ऐसा नहीं चाहता था। सभी लोग उस मूर्ति के पास पहुंचे। इस समय भीड़ कम हो गई थी। थोड़े-से लोग ही प्रदर्शनी के अन्दर रह गये थे।

सविता ने प्रश्न किया—"अब तो आप युवक को पहचान गये होंगे ?"

"जी, हां !" उस व्यक्ति ने कहा—"यह तो उस कारीगर की तस्वीर है जिसने हमारे यहां रहकर इस मूर्ति को बनाया था।"

'बहुत अच्छा।" सविता ने एक युवती की ओर इशारा करके पूछा—"इस युवती को आप पहचानिये।"

"यह आपकी मूर्ति है।"

"बिलकुल ठीक।" सविता ने कहा—"एक जो दूसरी युवती है, वह मेरी छोटी बहन है, जो मेरे पति इस युवक से ही प्यार करती थी और अंत में इनका नाम लेकर मर ही गई। यह छोटी बच्ची मेरी लड़की थी, जिसको एक-डेढ माह के बाद ही छोड़ दिया था। वह पांच साल की होकर मर गई।"

"ओह !" उस व्यक्ति ने कहा—"आपकी कहानी सुनकर मुझको बहुत दुःख हुआ।"

सविता ने कहा—"दुःख तो मेरा तब निवारण होगा, जब आप मूर्ति को मुझको दे देंगे।"

"आप मूर्ति की वास्तविक अधिकारिणी हुई।" उस व्यक्ति ने कहा—"इस आशय की सूचना मैं प्रबन्धक के पास लिखकर भेजवा दूंगा।"

"इसके लिये धन्यवाद।" सविता एकदम गद्‌गद् हो गयी। प्रसन्नता के मारे उसकी आवाज नहीं निकल रही थी तथा आंखों में पानी आ गया था।

थोड़ी देर बाद वहां से सभी अपने-अपने स्थान को चले गये।

प्रदर्शनी समाप्त होने के एक दिन पहले ही निर्णायकों ने अपना निर्णय दे दिया था। मगर कारंवाई के अभाव में एकदम गुप्त रखा गया था। अंतिम दिन दो बजे से एक सभा का आयोजन किया था। सभा-स्थल खचाखच भरा हुआ था। अपार भीड़ थी वहां, उस दिन। निर्णायक सभी मंच पर थे। अंत में प्रबन्धक श्री जय प्रकाश नारायण मंच पर आये और पत्थर की कारीगरी के बारे में बहुत-कुछ कहा। भाषण के दौरान कभी-कभी तालियों की गड़-गड़ाहट से सभास्थल गूंज उठता था। अन्त में उन्होंने घोषणा की—"प्रथम पुरस्कार सखीचंद की मूर्ति को पन्द्रह हजार रुपये नकद दिये जायेंगे।" कहने के साथ ही उनकी मूर्ति को कंधे पर चार आदमी रखे मंच पर आये—"सखीचंद की पत्नी श्रीमती सविता देवी ही इस पुरस्कार को ग्रहण कर सकती है।" सविता मंच पर आई और पन्द्रह हजार रुपये का एक चेक प्राप्त किया।

इसी तरह सभी को इनाम दिया गया और सभा की कारंवाई के साथ प्रदर्शनी को समाप्त घोषित किया गया।

सविता ने वह चेक सूखा-पीड़ितों के सहायतार्थ सरकार को दान दे दिया और मूर्ति को लेकर अपने गांव आ गई। क्योंकि सविता का सारा जीवन ही इस मूर्ति में छिपा था, अपनी बैठक के कोने में हिफाजत से रखकर नित्य पूजा-पाठ करने लगी।

उसको विश्वास था कि उसका पति जीवित है और कभी-न-कभी वह आयेगा।

सरकार ने एक लाख में उस मूर्ति को खरीदना चाहा था, मगर सविता ने नहीं बेचा, क्योंकि उस मूर्ति में उसका इतिहास है! उसके पति की कहानी है!! उसका जीवन है!!

भला वह कागज के नोटों से अपने जीवन को बेच सकती थी!

•

पन्द्रह

अपने जीवन की पूरी कहानी सुनने के बाद सविता यानी बुढ़िया अन्दर चली गयी।

उसके चले जाने के बाद मैंने अपनी पत्नी की ओर देखा—वह सिर झुकाकर रो रही थी। अचरज से मैंने पूछा—"यह क्या? तुम रो रही हो?"

"रोने की बात ही है।" मेरी पत्नी ने कहा–"इतना होने पर भी यह औरत अब तक जिन्दा बची हुई है। क्या यह साहस और त्याग की बात नहीं है?"

"जिसको जीना होता है, उसको दुनिया में कोई नहीं मार सकता।" और मैंने भी अपनी आंखें पोंछ लीं, क्योंकि दर्द भरी कहानी को सुनकर मेरा भी हृदय भर आया था। आंखों में आंसू आ गए थे।

"बहुत कष्ट हुआ है, बेचारी को।"

"कष्ट ही क्यों? यों कहो कि यह भुरभुरे रेगिस्तान में पैदल सफर करके यहां तक आ पहुंची है।" मैं कहने लगा—"इसी का नाम जिन्दगी है, जिसमें संघर्ष हो, व्यथा हो, पीड़ा हो!! जिसको आदमी सह न सके। यदि यह इस कहानी की पीड़ा को अपने माता-पिता, बहन या बच्चों की तरह नहीं सहन कर सकती तो इसका उन्हींकी तरह अन्त जरूरी है तभी तो हमको अपनी अनोखी कहानी सुना रही है, वर्ना यह कहां होती और हम लोग कहां होते।"

"आप यहां ठहरियेगा क्या?"

"नहीं ठहरने का कोई विचार नहीं है।" मैंने कहा—"मगर तुमको याद होगा कि कहानी सुनाने से पूर्व वह नौकर से हमारे भोजन के लिए कह चुकी थी। इसी से शायद कहानी समाप्त होते वह अन्दर यह देखने चली गई है कि भोजन तैयार हुआ या हीं।"

"भोजन का समय तो हो ही गया है।"

"समय पार कर रहा है।" मैंने कहा—"उनकी कहानी ही इतनी दिलचस्प थी कि भूख महसूस ही नहीं हुई थी।"

"भोजन के बाद क्या घर चला जाएगा?"

"हां, घर तो चलना ही होगा।" मैंने कहा—"मगर मुझको तुरन्त' ही वापस आना होगा।"

"क्या?" अचरज से मेरी पत्नी ने पूछा।

'इसका रहस्य मैं पीछे बतलाऊंगा।" मैं बोला—"यदि तुम उस रहस्यको जानना चाहती हो तो यहीं रुक जाना। मेरे वहां से लौटने के बाद सारा रहस्य आपसे आप खुल जायेगा।"

"तो मैं यहीं रुक जाऊंगी।" मेरी पत्नी ने कहा–"कहीं नौकर घन बरा न जाये।"

"वह नहीं घबरायेगा।" मैं इतना ही कह पाया था कि अंदर से बुढ़िया का नौकर आया और कहा—"भोजन तैयार है। मालकिन आप लोगों को बुला रही हैं।"

"चलो।" और कहने के साथ हम तीनों उसके साथ अन्दर पहुंचे, वहां चौका लग गया था। तीन पीढ़े रखे हुए थे। हर पीढ़े के बांयी ओर एक लोटा और एक शीशे का गिलास रखा हुआ था, जिसमें पानी भरा हुआ था। हम दोनों के पीढ़े पर बैठते ही हमारे सम्मान में बुढ़िया भी एक पीढ़े पर बैठी।

हम सभी ने भोजन किया। कभी-कभी आपस में हंसी भी हो जाती थी, जब मेरा पुत्र विजय कुछ इस प्रकार से आलू की सब्जी खाता था। वह एकदम नटखट था। दही तो उसने सारे चेहरे पर पोत लिया था। मेरी पत्नी कभी-कभी दीन दशा में मेरी ओर देख कर आंखों में कुछ कहती थी। मगर मैं कुछ नहीं बोल रहा था।

भोजनोपरान्त हम सभी लोग बैठक में आये। मुझको पान खाने को मिला। पान को जैसे ही मैंने मुंह में डाला, बुढ़िया की आवाज सुनाई दी—'शर्त के अनुसार…"

उसकी बात को मैंने बीच में ही काट दिया—"हां, आपकी इस कहानी को पुस्तक का रूप तुरन्त ही दे दूंगा। मगर उस पुस्तक का नाम क्या रखा जायेगा?"

"नाम आप ही रखिएगा।"

"नहीं, यह उचित नहीं है।" मैंने कहा।

"तो 'पत्थर की मूर्ति' ही रखियेगा, क्योंकि हमारे जीवन का अन्तिम केन्द्र यही मूर्ति है और इसी मूर्ति के कारण आप मेरे यहां तक पहुंच सके हैं। मूर्ति के कारण ही तो आपका-हमारा साथ हुआ है।" बुढ़िया ने कहा।

"हां।" मैंने कहा—"हमारा केन्द्र तो यही पत्थर की मूर्ति है।"

"बस!"

"पुस्तक लिखना तो मेरे लिए एकदम आसान है।" मैं बोला, "मैं सोच रहा हूं कि कहानी का अन्त किस तरह का होना चाहिए।"

"जैसा आप समझें।"

"यदि अंत में कल्पना का स्थान दिया जाय तो किताब का अर्थ ही बदल जा सकता है।" मैंने कहा—"अच्छा होता, इसका अंत आप ही करतीं या कुछ सुझाव इसके बारे में देतीं।"

वह मौन रह गयी। उसने कुछ कहा नहीं।

"मूर्ति को तो मैं लेता जाऊं न?"

"जी, हां!" उसने कहा—"आप इसको ले जायं।"

मैंने कहा—"मैं मूर्ति को लेकर शहर चला जाऊंगा। मेरी श्रीमतीजी तब तक यहीं रहेंगी, क्योंकि शहर से मैं तुरन्त ही वापस लौटूंगा। और आशा है, वहीं से मैं कहानी का अंत लेता आऊंगा। मुझे पूरी उम्मीद है कि उस अंत से आप प्रसन्न ही होंगी और विशेष प्रसन्न होंगी।"

बुढ़िया ने कुछ नहीं कहा।

वहां से नौकर के सिर पर मूर्ति रखवाकर मैं शहर आया। घर में मूर्ति को मेरे नौकर की मदद से रखा गया। तब बुढ़िया के नौकर को वापस भेज दिया और कह दिया कि मैं जल्दी ही आ रहा हूं। वह वहां से चला गया।

उसके जाने के बाद अपने नौकर को डांट-डपट कर उसके दाढ़ी और मूंछों को कटवाया और साफ कपड़े पहना कर कहा—"तुम मेरे पीछे-पीछे आओ।" यहां हमने 'आप' कहना उचित नहीं समझा, शायद वह भांप न जाय या उसको शक न हो जाए, उसने कुछ प्रतिवाद नहीं किया और मेरे पीछे-पीछे चला आया।

बुढ़िया के गांव में प्रवेश किया। नौकर ने मुझसे कुछ नहीं पूछा कि मैं कहां ले जा रहा हूं। यहां तक कि मैं बैठक में पहुंच गया, जहां मेरी पत्नी और विजय बैठे थे। मैं वहां पहुंचा और बैठ गया। मेरा नौकर एक ओर खड़ा था। उसी समय बुढ़िया अन्दर से आयी। उसके आते ही मैं खड़ा हो गया और कहा—"इस आदमी को आप पहचानिये तो।"

बुढ़िया ने उसको ध्यान से देखा और पैरों पर गिरकर बोली, "नाथ!"

दोनों पति-पत्नी युगों के बाद आज मिल गये।

मेरा नौकर सखीचन्द ही था।

• • •